तेलुगु और उसका साहित्य

: तेलुगु-भाषा और साहित्य का परिचयात्मक विश्लेषण :

लेखक
श्री हनुमच्छास्त्री 'अयाचित' एम० ए० (त्रितय)
अध्यक्ष हिन्दी विभाग
श्री वेंकटेश्वर कलाशाला तिरुपति (आन्ध्र)

सम्पादक : क्षेमचन्द्र 'सुमन'





सरस्वती सहकार, दिल्ली ६
की ओर से प्रकाशक
राजकमल प्रकाशन
दिल्ली बम्बई नई दिल्ली

प्रथम संस्करण

मूल्य : दो रुपये

क्षेमचन्द्र 'सुमन' संचालक सरस्वती सहकार ३९७१ हाथीखाना पहाड़ी धीरज, दिल्ली ६ के लिए राजकमल पब्लिकेशन्स लिमिटेड, बम्बई द्वारा प्रकाशित और गोपीनाथ सेठ द्वारा नवीन प्रेस दिल्ली में मुद्रित ।

निवेदन

स्वतन्त्र भारत के साहित्यिक विकास में भारत की भाषाओं तथा उपभाषाओं का अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान है। आज यह अत्यन्त खेद का विषय है कि हमारे देश का अधिकांश पठित जन-समुदाय अपनी प्रादेशिक और समृद्ध जनपदीय भाषाओं के साहित्य से सर्वथा अपरिचित है। कुछ दिन पूर्व हमने 'सरस्वती सहकार' संस्था की स्थापना करके उसके द्वारा 'भारतीय साहित्य-परिचय' नामक एक पुस्तक-माला के प्रकाशन की योजना बनाई और इसके अन्तर्गत भारत की लगभग २७ भाषाओं और समृद्ध उप-भाषाओं के साहित्यिक विकास की रूप-रेखा का परिचय देने वाली पुस्तकें प्रकाशित करने का पुनीत संकल्प किया। इस पुस्तक-माला का उद्देश्य हिन्दी-भाषी जनता को सभी भाषाओं की साहित्यिक गति-विधि से अवगत कराना है।

हर्ष का विषय है कि हमारी इस योजना का समस्त हिन्दी-जगत् ने उत्फुल्ल हृदय से स्वागत किया है। प्रस्तुत पुस्तक इस पुस्तक-माला का एक मनका है। आशा है हिन्दी-जगत् हमारे इस प्रयास का हार्दिक स्वागत करेगा। इस प्रसंग में हम पुस्तक के लेखक श्री हनुमच्छास्त्री 'अयाचित' के हार्दिक आभारी हैं, जिन्होंने अपने व्यस्त जीवन में से कुछ अमूल्य क्षण निकालकर हमारे इस पावन यज्ञ में सहयोग दिया है। राजकमल प्रकाशन के सञ्चालकों को भूल जाना भी भारी कृतघ्नता होगी, जिनके सक्रिय सहयोग से हमारा यह स्वप्न साकार हो सका है।

३६७१ हाथीखाना
पहाड़ी धीरज, दिल्ली—६

—*क्षेमचन्द्र 'सुमन'*

श्री बाला जी वेंकटेश्वर जी
के चरण-कमलों में

प्रस्तावना

आज 'तेलुगु और उसका साहित्य' नामक यह छोटी-सी पुस्तक हिन्दी-भाषा-भाषियों के समक्ष प्रस्तुत करते हुए मुझे परम हर्ष का अनुभव हो रहा है। मैंने इसमें 'गागर में सागर' भर देने की एक विनम्र चेष्टा की है। तेलुगु-साहित्य का इतिहास इतना विस्तृत और गम्भीर है कि इस ज़रा-सी पुस्तक में उसकी रूप-रेखा प्रस्तुत करना कठिन काम था। मैंने इस विषय का अधिक ध्यान रखा है कि आन्ध्रेतर-भाषियों को राज-भाषा हिन्दी के माध्यम से दक्षिण भारत की एक प्रमुख भाषा—तेलुगु—के साहित्य का परिचय सरल ढंग से मिल जाय। अतः इसमें साहित्यिक वाद-विवादों और मत-मतांतरों का विस्तृत वर्णन यथासम्भव छोड़ ही दिया गया है।

तेलुगु-साहित्य के इतिहास को मैंने साहित्य की तत्कालीन प्रमुख प्रवृत्तियों के आधार पर अति प्राचीन साहित्य (पुराण-काल), काव्य-काल, ह्रास-काल, और आधुनिक-काल आदि भागों में विभाजित किया है। प्रत्येक काल के आरम्भ में उस काल के केवल प्रमुख कवियों और कृतियों का वर्णन किया है। कवियों की जन्म-तिथि के विषय में जहाँ एकाधिक मत प्रचलित हैं वहाँ मैंने उसी मत को ही अपनाया है, जो मेरी समझ में उचित जान पड़ा।

अन्त में 'विविध प्रवृत्तियाँ' तथा 'पत्र-पत्रिकाएँ और संस्थाएँ' शीर्षक अध्यायों में समस्त तेलुगु-साहित्य तथा अनुवाद-कार्य का समालोकन करके उसकी प्रमुखतम पत्र-पत्रिकाओं और साहित्यिक

संस्थाओं की विभिन्न प्रवृत्तियों का दिग्दर्शन भी करा दिया गया है। साथ ही यत्र-तत्र यथा-प्रसंग तेलुगु और हिन्दी के प्रमुख साहित्यकारों और कवियों का तुलनात्मक अंकन भी अत्यन्त संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। आशा है यह पुस्तक हिन्दी-भाषा-भाषियों को तेलुगु के साहित्य-मंदिर में प्रवेश पाने के लिए अवश्य सहायक होगी।

तेलुगु-साहित्य के इतिहास पर जितने प्रमुख प्रामाणिक ग्रन्थ आज उपलब्ध हैं, उन सभी से मैंने इस पुस्तक के प्रणयन में सहायता ली है। सहायक-ग्रन्थों की सूची अन्त में दी गई है। इन पंक्तियों का लेखक उन सभी कृति-प्रणेताओं के प्रति अत्यन्त कृतज्ञ है।

'भारतीय-साहित्य-परिचय' नामक पुस्तक-माला की आयोजना करके निस्सन्देह प्रिय बन्धु श्री क्षेमचन्द्र 'सुमन' ने प्रशंसनीय कार्य किया है। पुस्तक की पाण्डुलिपि के संशोधन, परिमार्जन तथा प्रकाशन में उन्होंने जो परिश्रम किया है उसके लिए मैं उनका अत्यन्त ही आभारी हूँ।

—हनुमच्छास्त्री 'अयाचित'

क्रम

: १ :

तेलुगु-प्रदेश, जनता तथा भाषा

भौगोलिक स्थिति

तेलुगु भाषा और उसके साहित्य का परिचय देने से पूर्व तेलुगु-प्रदेश की प्राकृतिक सम्पदा तथा जन-गणना आदि विषयों पर प्रकाश डालना अत्यन्त आवश्यक है।

वैसे तो आंध्र जनता अपना निवास-स्थान छोड़कर सुदूर प्रदेशों में भी जा-जाकर बस गई है, फिर भी यहाँ हम आंध्र-प्रदेश का व्यवहार केवल उस भू-खण्ड के सम्बन्ध में कर रहे हैं जहाँ आंध्रों की अधिकाधिक संख्या अपना जीवन-निर्वाह करती थी और कर रही है। इस मापदण्ड के अनुसार आंध्र-प्रदेश के अन्तर्गत निम्न लिखित भू-खण्ड शामिल हैं—(१) हिन्द-संघ के श्री काकुलम्, विशाखपट्टणम्, उभय गोदावरी, कृष्णा, गुण्टूर, नेल्लूर, कडपा, कर्नूल, अनन्तपुरम्, चित्तूर जिले और बल्लारि जिले के कुछ ताल्लुके, (२) हैदराबाद का तेलंगाना प्रान्त, (३) मैसूर के कोलारु व चित्रदुर्ग जिले और (४) उत्कल-प्रदेश के गंजाम तथा कोरापुट्टि जिले। इन प्रान्तों की जनता अधिक संख्या में सदियों से तेलुगु भाषा का प्रयोग कर रही है। उक्त प्रान्तों के अतिरिक्त सुदूर दक्षिण के तंजौर, तथा मदुरा आदि स्थलों में आंध्र पर्याप्त संख्या में पाए जाते हैं। आंध्र

विभिन्न देश-प्रदेशों में निम्न प्रकार बसे हुए हैं—

(१) हिन्द-संघ के तेलुगु जिलों में (१९५१ की जन-गणना के अनुसार) २०८८३२०४।

(२) तेलंगाना में (१९५१ के हिसाब के अनुसार) १०४८९७३४।

(३) मैसूर में (१९३१ के अनुसार) १२ लाख के लगभग।

(४) मध्य प्रदेश में १३०३४३।

अन्य प्रान्तों में

(१) तमिल प्रान्त के जिलों में १९३१ के अनुसार ३५००००।

(२) बम्बई प्रान्त में १६३००।

(३) जमशेदपुर आदि जगहों में १५०००।

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि आंध्र अथवा तेलुगु भाषा लगभग चार करोड़ कण्ठों की मातृ-वाणी है। इस प्रान्त की सीमाएँ उत्तर में उत्कल, दक्षिण में तमिलनाड, पश्चिम में महाराष्ट्र और कर्णाटक तथा पूर्व में बंगाल की खाड़ी है। राजनीतिक धरातल पर आंध्र-प्रदेश की निजी सत्ता विगत अक्तूबर (१९५३) की पहली तारीख से स्थापित हो गई है। ऊपर जो कुछ लिखा गया है वह केवल भाषा-भाषियों की संख्या के आधार पर ही। विद्वानों का मत है कि इस संख्या के आधार पर विभाजित भारत में तेलुगु-भाषा-भाषियों का द्वितीय स्थान है। कहने की आवश्यकता नहीं कि पहला स्थान राज-भाषा हिन्दी का है।

आंध्र-प्रदेश की प्राकृतिक छटा अतीव सुन्दर है। यहाँ के पहाड़ और नदियाँ दोनों प्राकृतिक शोभा को बढ़ाने वाले मूल उपादान हैं। पूर्व दिशा में पूर्वी पहाड़ी नाम से एक बड़ी पर्वत-माला उत्तर से दक्षिण तक फैली हुई है। ये पहाड़ पश्चिमी पर्वतों की अपेक्षा कम ऊँचे हैं। इस पर्वत-माला के नाम भिन्न-भिन्न स्थानों में भिन्न-भिन्न हैं। जैसे, गोदावरी जिले में 'पापिकोंडलु' नेल्लूर जिले में 'वेलिकोंडलु' कहलाते हैं। इनमें से कई पहाड़ों पर भगवान् के विविध रूप मन्दिरों में स्थापित हुए हैं, जिनके दर्शनों के लिए लाखों यात्री इकट्ठे होते हैं। इनमें से विशाख जिले का सिंहाचल,

गोदावरी जिले का सत्यनारायण पर्वत और भद्राचल, कृष्णा जिले का वेदाचल क्षेत्र, विजयवाड़ा का कनक दुर्गा-क्षेत्र, कर्नूल जिले का श्री शैल, तथा चित्तूर जिले का तिरुमल (तिरुपति) प्रधान हैं। इन क्षेत्र-स्थलों के दर्शनों के लिए प्रतिवर्ष लाखों यात्री इकट्ठे होते हैं। इस प्रकार प्राकृतिक छटा के दर्शन से उनके नयनों में आह्लाद की रेखाएँ खिंच जाती हैं तो इन पहाड़ों के चारों ओर घिरे हुए धार्मिक वायु-मण्डल के कारण इनके मन आनन्दित हो उठते हैं। प्राकृतिक सुषमा के साथ पवित्र धार्मिक भावना का मधुर मिलन कराने वाले हमारे पूर्वजों की सूझ निःसन्देह स्तुत्य है। तेलंगाना में भी हनुमकोंडा आदि ऐसे कई रम्य स्थल हैं। हनुमकोंडा पर पद्मावती देवी का मन्दिर है। धार्मिक महत्ता के अतिरिक्त इन पहाड़ों की ऐतिहासिक महत्ता भी बहुत अधिक है। इन पर पुराने राजे-महाराजे अपनी-अपनी राज्य-सत्ता स्थापित करने की लालसा में बड़े-बड़े सुदृढ़ दुर्ग बनवाते थे। ऐसे किलों में गोलकोंडा, कोंडपल्लि तथा चन्द्रगिरि आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। अब भी इन भग्नावशेषों के दर्शनों से यात्रियों की आँखें गीली हो जाती हैं और प्राचीन वैभव के पुनीत स्मरण से उनके हृदय और कण्ठ गद्गद् हो उठते हैं। इधर विन्ध्य-पर्वत-माला के दक्षिण में प्रवाहित होने वाली पुण्य नदियों में सबसे बड़ी नदियाँ गोदावरी, कृष्णा और पिनाकिनी अधिकांशतः आंध्र-प्रदेश को ही अपने पावन जल से पवित्र एवं उर्वर बना देती हैं।

गोदावरी का उद्गम-स्थान नासिक-त्र्यम्बक है। तेलुगु-सीमा में पहले-पहल वह तेलंगाने में पदार्पण करती है। इसमें मिलने वाली उपनदियाँ कई हैं, जिनमें मंजीरा, प्राणहिता तथा शबरी आदि मुख्य हैं। विस्तृत गोदावरी की तुलना पतित-पावनी गंगा से ही की जा सकती है। अतः इसे दक्षिण की गंगा भी कहते हैं। धवलेश्वरम् तथा दुम्मगूडेम् आदि जगहों पर बाँध भी हैं। अभी एक बड़े बाँध की आयोजना है। इस योजना के प्रणेता सर एस० बी० राममूर्ति हैं। यदि रामपाद सागर का निर्माण हो जाय तो आंध्र-प्रदेश अन्न के विषय में स्वयं ही समृद्ध न हो, प्रत्युत दूसरे प्रान्तों को भी सहायता पहुँचा सकता है। इस नदी के किनारे कई तीर्थ-स्थल हैं, जिनमें राजमहेन्द्रवरम,

धवलेश्वरम्, पट्टेस तथा मुक्तीश्वरम् आदि प्रसिद्ध हैं। राजमहेन्द्रवरम् के पास पावन-सलिला गोदावरी गौतमी और वसिष्ठा नामक दो धाराओं में बँट जाती है। आगे चलकर वह सात धाराओं में विभक्त होती है, अतः उन जगहों में वह 'सप्त गोदावरी' कहलाती है।

कृष्णा नदी का उद्गम-स्थल पश्चिमी पर्वत-माला में महाबलेश्वर के निकट है। आठ सौ मील बहकर कृष्णा नदी अपने को समुद्र में विलीन कर देती है। उपनदी भीमा जिला रायचूर में आ मिलती है। दूसरी उप-नदियाँ तुङ्गभद्रा, मूसी और मूनरु मुख्य हैं। कृष्णा नदी पर विजयवाड़ा के पास एक बड़ा बाँध है। यहाँ से खेती-बारी के लिए बड़ी दूर तक नालों के द्वारा पानी का वितरण हो रहा है। यहाँ नदी पर रेल का मज़बूत पुल भी है। गोदावरी और कृष्णा नदियों पर नौका-यान का अच्छा प्रबन्ध है।

सूर्योदय के समय उसकी प्रथम रश्मि के स्पर्श से जब विशाल गोदावरी का वक्षस्थल पुलकित हो उठता है, तब अतीव रमणीक दृश्य हमारे नयनों के समक्ष राजमहेन्द्रवरम् के पास उपस्थित होता है। कुहासे के झीने आवरण को चीरते हुए जब रेलगाड़ी पुल पर से चलती है, तब ऐसा मालूम पड़ता है मानो वक्षःस्थल पर के राग-रंजित अम्बर को हटाते हुए, गोदावरी उनींदी आँखें खोलते हुए इन यात्रियों को ऊर्मि रूपी मन्द मुसकान भेंट कर रही हो। 'पापिकोंडलु' के निकट भी गोदावरी की शोभा लुभावनी है। वैसे ही कृष्णा नदी की शोभा भी विजयवाड़ा के समीप दर्शनीय है। दोनों ओर ऊँचे पहाड़ खड़े हैं। बीच में से कृष्णा नदी इठलाती, इतराती चली चलती है। यदि गोदावरी प्रसन्न-गंभीरा और शान्त-सलिला हो तो कृष्णा नदी एक नवोढ़ा नायिका की भाँति सकुचाते हुए भी, उद्वेग की घड़ियों में उमड़कर निकल पड़ती है। दोनों का प्राकृतिक सौन्दर्य अनुभवगम्य है।

आंध्र-प्रदेश की अन्यान्य सुन्दर नदियाँ ऋषिकुल्या, वंशधारा, नागावली तथा पिनाकिनी आदि हैं। फलतः आंध्र-प्रदेश में उपजाऊ ज़मीन अधिक है। यहाँ चावल अधिक पैदा होता है। मिर्च, उड़द, अरहर, तथा कपास आदि दूसरी फसलें हैं।

नंद्याल, पोलवरम् तथा सिंगराय कोंड आदि जगहों में लोहा, सिंगरेनि भद्राचलम् आदि प्रान्तों में कोयला तथा उदयगिरि, कालहस्ति आदि जगहों में ताँबा मिलता है। इन धातुओं की सहायता से औद्योगीकरण (Industrialisation) भी जगह-जगह पर हो रहा है।

विजयवाड़ा और मंगलगिरि में सीमेण्ट के कारखाने हैं। मछली बन्दर की साइंटिफ़िक कम्पनी पर्याप्त प्रसिद्ध है।

'तेनुगु', 'तेलुगु' और 'आंध्र'

'तेनुगु', 'तेलुगु' और 'आंध्र' शब्दों में प्रत्येक का प्रयोग आजकल (१) देश, (२) जाति और (३) भाषा तीनों अर्थों में हो रहा है। सामूहिक रूप से इस विस्तृत भू-खण्ड के तेलुगु अथवा आंध्र-प्रदेश कहे जाने पर भी निम्न तीन भाग हैं—(१) उत्तर सरकार या सागर-सीमा (२) रायल सीमा अथवा पर्वत-सीमा और (३) तेलंगाना। उत्तर सरकार के अन्तर्गत श्रीकाकुलम्, विशाखपट्टणम्, उभय गोदावरी, कृष्णा, गुण्टूर और नेल्लूर जिले हैं। रायल सीमा में बल्लारि के तीन ताल्लुके, अनन्तपुरम्, चित्तूर, कडपा और कर्नूल जिले शामिल हैं। तेलंगाना में हैदराबाद-प्रदेश के लगभग आठ जिले हैं। 'उत्तर सरकार' शब्द का प्रयोग पहले-पहल दिट्टकवि नारायण ने किया। मालूम होता है कि इस शब्द का प्रयोग सर्वप्रथम मुसलमानों के द्वारा हुआ था।

बौद्ध युग में यह प्रान्त तीन नामों से व्यवहृत होता था—(१) मंजीर देश, (२) वज्र देश, और (३) नाग-भूमि। मंजीर देश से मतलब आधुनिक तेलंगाना से ही है, क्योंकि मंजीरा नदी इस प्रांत में आजकल भी बह रही है। 'वज्र देश' शब्द का प्रयोग भी बौद्ध जातक-ग्रन्थों में प्राप्त है। एक बार कलिंग देश की राजकुमारी और उसके पति दोनों भगवान् बुद्ध का दाँत लेकर एक पेटी में सुरक्षित रखकर नाव पर सिंहल द्वीप की ओर जा रहे थे। मार्ग में उनकी नाव 'वज्राल दिन्ने' के पास किनारे लगी। इतिहास के

विद्वानों के अनुसार यह 'वज्राल दिन्ने' आंध्रों की राजधानी धान्य कटक प्रान्त ही होगा। उन दिनों आंध्र प्रान्त में हीरे बहुत मिलते थे। 'नागभूमि' शब्द को भी बौद्ध आंध्र प्रान्त के लिए प्रयुक्त करते थे। 'आंध्र' शब्द का प्रयोग 'ऐतरेय ब्राह्मण' में प्राप्त है। प्राचीन काल में 'आंध्र' की जगह 'अंध्र' शब्द ही अधिक प्रचलित था। समानार्थक शब्द होने पर भी 'तेलुगु' और 'तेनुगु' की व्युत्पत्ति के विषय में पण्डितों में आज तक भी बड़ा मतभेद है। विद्वानों के एक दल के अनुसार 'तेलुगु' शब्द का मूल रूप 'त्रिलिंग' है, तो दूसरों के मतानुसार 'त्रिकलिंग' है। 'प्रताप रुद्र यशो भूषण' में विद्यानाथ ने यों लिखा है :

"यैर्देशस्त्रिभिरेष याति महतीं ख्यातिं त्रिलिंगाख्यया।
येषा काकति राज कीर्ति विभवैः कैलास शैलाः कृताः॥
ते देवाः प्रसरत्प्रसाद मधुरा श्री शैल कालेश्वरः।
द्राक्षारामनिवासिनः प्रतिदिनं त्वच्छ्रेयसे जाग्रतु॥"

इसके अनुसार श्री शैल, कालेश्वर और द्राक्षाराम के अन्तर्गत जो भू-खण्ड है, वह त्रिलिंग है, क्योंकि इन क्षेत्रों में शिवजी के तीन लिंग अर्थात् श्री शैल में मल्लिकार्जुन स्वामी, कालेश्वर में कालेश्वर और द्राक्षाराम में भीमेश्वर स्वामी विराजमान हैं। परन्तु विद्यानाथ से कई शताब्दी पूर्व ही (अर्थात् सन् १५० ई० के लगभग) यूनान के भूगोल-शास्त्री टालमी ने इस प्रान्त के लिए 'ट्रिलिंगान' शब्द का प्रयोग किया था। बर्मा में रहने वाली एक जाति का नाम आजकल भी 'तलैंगु' प्रसिद्ध है। प्रायः 'तिलिंग' 'तलैंगु' शब्दों का संस्कृतीकरण होकर 'त्रिलिंग' शब्द बना होगा। 'कलिंग' शब्द गोदावरी नदी के उत्तर प्रान्त के लिए प्रयुक्त होता था। आजकल भी समुद्री जीवन बिताने वाले लोग 'कलंग' शब्द से अभिहित किये जाते हैं। इसके विपरीत जो स्थलीय जीवन बिताते हैं उनके लिए 'तलिंग' तथा 'तिलिंग' आदि शब्द प्रयुक्त होते थे। 'तल' शब्द का सम्बन्ध स्थल शब्द से स्पष्ट ही है। दूसरे विद्वानों के अनुसार 'तेलुगु' शब्द की व्युत्पत्ति 'त्रिकलिंग' शब्द से है। त्रिकलिंग अति प्राचीन शिला-लेखों में भी प्राप्त है :

"सन् दक्षिणा पथ स त्रिकलिंग देशमन्वपालयत्।"[1]

'त्रिकलिंग' शब्द से धीरे-धीरे उच्चारण की सुगमता के लिए 'क' के घिस जाने पर 'त्रिलिंग' शब्द बन गया था।

'तेनुगु' शब्द भी प्राचीन काल से प्राप्त है। आंध्र-साहित्य के प्रथम कवि नन्नय्य भट्ट ने 'तेनुगु' शब्द का प्रयोग अपने काव्य में किया है। इस शब्द की व्युत्पत्ति के विषय में तीन मत प्रचलित हैं—१. यह शब्द 'त्रिनग' शब्द का बिगड़ा हुआ रूप है। २. आंध्रों के आक्रमण के कारण यहाँ के देशवासी दक्षिण दिशा में चले गए। तमिल में 'तेन' शब्द का अर्थ 'दक्षिण' है। प्रायः यह समझा जाता है कि आंध्र आर्य थे और 'तेलुगु' अथवा 'तेनुगु' वाले द्राविड़। आजकल तो ऐसा कोई भेद-भाव नहीं माना जाता। तेलुगु भाषा में 'न' और 'ल' का विनिमय बहुत प्रचलित है। अतः 'तेन्नुगु' शब्द से 'तेलुगु' शब्द निकला है। ३. इस प्रान्त की भाषा 'तेनुगु' अर्थात् शहद-जैसी है। तेने-शहद+अगु=जो हो। अतः इस भाषा का नाम 'तेनुगु' है। इसीके पीछे प्रदेश का नाम भी प्रचलित हुआ।

प्राचीन काल में यह प्रान्त 'वेंगि' नाम से भी प्रचलित था। इतिहास के विद्वानों के मतानुसार यह कृष्णा-गोदावरी की अन्तर्वेदी भूमि है। किसी कारणवश यह प्रदेश जल गया था। 'वेगु' धातु का अर्थ तेलुगु में जलना है। इसके अनुसार यह 'वेंगि' देश कहलाया।

जातिगत भेद-विभेद भी आंध्रों में कई हैं। एक जाति के अर्थ में प्रथमतः 'आंध्र' शब्द का प्रयोग 'ऐतरेय ब्राह्मण' में मिलता है। 'ऐतरेय ब्राह्मण' की रचना ई० पू० १००० वर्षों की थी। 'आंध्र' जनता के उद्गम के विषय में एक कथा प्रचलित है। किसी कारण से ऋषि विश्वामित्र ने अपने ५० लड़कों को शाप दिया कि तुम लोग आंध्र, पुलिन्द, शबर आदि जातियाँ बन जाओ। कहा जाता है कि ये ही आगे चलकर भिन्न-भिन्न जातियों में विकसित हुए। 'हरिवंश पुराण' के अनुसार श्रीकृष्ण के प्रतियोद्धा चाणूर मल्ल आंध्र थे। सम्भवतः आंध्र आर्य क्षत्रिय थे। ये कृष्णा तथा गोदावरी

---

1 गुणगविजयादित्य का शिला-लेख।

की अन्तर्वेदी में फैलकर अपना शासन चलाने लगे। आरम्भ में उनकी भाषा निस्सन्देह कोई प्राकृत विशेष थी।

समय बीतने पर वह प्रान्त की देशी भाषा से घुल-मिल गई और 'आंध्र' या 'तेलुगु' कहलाने लगी। पुलिन्द तथा शबर आदि दूसरी जातियाँ आज भी अशिक्षित दशा में पड़ी हुई हैं। इनमें से शबर जाति कुछ सीमा तक सभ्य कही जा सकती है। ये मन्त्र और तन्त्र-विद्याओं में कुशल थे। प्राचीन संस्कृत-साहित्य में भी शाबर-मन्त्रों की प्रशस्ति है। आजकल ये गंजाम और विशाखपट्टणम् जिलों में हैं। विवाह-प्रथा में आधुनिकता पाई जाती है। प्रेम के अनन्तर विवाह करना, विधवा-विवाह तथा तलाक आदि आचार-व्यवहार इनमें पाए जाते हैं। इनकी कोई लिखित भाषा नहीं थी। हाल ही में स्वर्गीय गिडुगु राममूर्ति पन्तुलु ने अथक परिश्रम करके इनको लिपि और कोश की भिक्षा दी थी।

इस वर्ग की दूसरी प्रधान जाति 'नाग' है। ये इस प्रान्त के आदि-वासियों में से हैं। ये मुख्यतः सर्पों की पूजा करते हैं। 'महाभारत' में तो इनके बारे में कई गाथाएँ प्रचलित हैं। ये शिल्प आदि कलाओं में पारंगत थे। सर्प-पूजा का प्रभाव आर्य जातियों पर भी पड़ा। आज दिन भी 'नागुल-चविति' नामक एक त्योहार आंध्र-प्रान्त की स्त्रियों के द्वारा मनाया जाता है। इस अवसर पर स्त्रियाँ निर्भीक भाव से साँपों की बाँबी के पास जा-जाकर उनको दूध पिलाती हैं। इस व्रत से यह आशा रखी जाती है कि साल-भर तक उनके पुरुष, पशु और बाल-बच्चे साँपों से बचे रहें।

'केयिरन' की सहायता से विशेषतः तेलंगाना की सभ्यता पर प्रकाश पड़ता है। 'केयिरन' प्राचीन कब्रों को कहते हैं। इन कब्रों से यह मालूम पड़ता है कि प्राचीन काल में लोग मृत आदमियों को ज़मीन के अन्दर मन्दिर-जैसा बनाकर उनमें बिठा देते थे। ऐसे 'केयिरन' तेलंगाना में कई जगह प्राप्त हैं। इनसे यह लक्षित होता है कि हजारों वर्ष पहले ही यहाँ के लोग सभ्यता में बढ़े-चढ़े थे। ये लोग ऐसी जगहों में गाँवों का निर्माण करते थे जहाँ पानी और लकड़ी की अधिकता हो।

भाषा

'आंध्र', 'तेनुगु' और 'तेलुगु' आदि नामों से यह भाषा अभिहित होती है। प्राचीन काल में श्रीनाथ कवि ने 'कर्णाटक' शब्द से भी इस भाषा का व्यवहार किया था। परन्तु कर्णाटक शब्द का प्रयोग बड़े ही व्यापक अर्थ में हुआ। आजकल यह शब्द इस भाषा के लिए प्रयुक्त नहीं होता। प्रायः 'आंध्र' शब्द से संस्कृतनिष्ठ भाषा का, 'तेनुगु' और 'तेलुगु' शब्दों से ऐसी भाषा का बोध होता है जिसमें संस्कृत-शब्दों का प्राचुर्य न हो। इन शब्दों की उत्पत्ति के विषय में हम पीछे लिख चुके हैं। तेलुगु भाषा के विकास के सम्बन्ध में प्रधानतः विद्वानों में दो मत प्रचलित हैं। एक मत के उन्नायक डॉ० नारायणराव थे, जिनके अनुसार 'तेलुगु' द्राविड़ भाषा न होकर प्राकृत-जन्य भाषा है, विशेषतः उसका सम्बन्ध पैशाची प्राकृत से है। दूसरे मत के उन्नायक बिशप काल्डवेल तथा कोराड रामकृष्णय्य आदि सज्जन हैं; जिनके अनुसार 'तेलुगु' का कोई सम्बन्ध किसी प्राकृत भाषा से न होकर, उसका सीधा सम्बन्ध द्राविड़-परिवार से है। सम्भव है, इन दोनों मतों में सचाई का अंश बहुत-कुछ हो और 'तेलुगु' का विकास दोनों प्रकारों की भाषाओं के सम्मिलन से हुआ हो। डॉ० नारायणराव तो तमिल शब्द की उत्पत्ति भी 'द्राविड़' शब्द से न मानकर संस्कृत के 'धर्मिल' अथवा प्राकृत के 'ध्रमिल' शब्द से मानते हैं। जो कुछ भी हो, आजकल 'आंध्र', 'तेलुगु' तथा 'तेनुगु' शब्द एकार्थवाची हो गए हैं और इस भाषा में निस्सन्देह ७५ प्रतिशत संस्कृत-शब्दों का समावेश है। संस्कृत का स्वस्थ तथा उपादेय प्रभाव तेलुगु भाषा और साहित्य पर पड़ा है। तेलुगु भाषा अपने सहज माधुर्य के लिए प्रसिद्ध है। अतः संस्कृत और तेलुगु का मणि-कांचन-संयोग हुआ है। महान् साहित्य-सेवी और महाराजा श्री कृष्णदेव-रायलु ने (जिन्होंने तेलुगु के कवियों को ही नहीं, तमिल तथा कन्नड़ आदि दूसरी भाषाओं के कवियों को भी आश्रय दिया) मुक्त कण्ठ से घोषित किया है कि देशी भाषाओं में 'तेलुगु' का माधुर्य स्तुत्य है। पाश्चात्य विद्वानों ने भी

'तेलुगु' की संगीत-प्रवणता पर मुग्ध होकर इसे 'इटैलियन ऑफ दी ईस्ट' (Italian of the East) कहकर सम्मानित किया।

केवल भाषा की दृष्टि से देखने पर इसमें प्रायः सभी ध्वनियों के लिए लिपि-चिह्न प्राप्त हैं। ह्रस्व 'ए', 'ओ', दन्त्य 'च' और 'ज' तथा शकट 'रेफ' आदि इसके विशिष्ट वर्ण हैं। इसमें 'ळ' भी प्राप्त है। इनके अलावा अर्धानुस्वार 'ँ' एक विशेष लिपि-चिह्न है। उच्चारण में इसका अस्तित्व न माने जाने पर भी भाषा का क्रम-विकास जानने के लिए शब्दों के लिखने में आवश्यकता पड़ने पर इसका प्रयोग करना उपयोगी समझा जाता है। तेलुगु प्रधानतया 'अजंत' भाषा है अर्थात् इसके शब्द स्वर-चिह्नों के साथ समाप्त होते हैं। हिन्दी तो हलंत भाषा है। अतः तेलुगु भाषा संगीत के लिए अत्यन्त उपयुक्त है। इसीलिए तो कर्णाटक-संगीत में ६० प्रतिशत पद तेलुगु के हैं।

लिपि

प्रायः सब ध्वनियों के लिए ध्वनि-चिह्न अथवा वर्ण इस लिपि में हैं। मौर्यों के साथ-साथ ब्राह्मी लिपि भी दक्षिण में फैल चुकी थी। ईसा के आरम्भ-काल में यह आंध्र कर्णाटक लिपि में परिवर्तित हुई। इसीको वेंगी लिपि भी कहते थे। शालंकायन राजाओं के काल में सुदूर देशों में भी इस लिपि का प्रचार हुआ। सन् सातवीं सदी से तमिलों ने अपने लिए एक अलग लिपि बनाई। आजकल भी 'तेलुगु' और 'कन्नड़' लिपियों में बड़ा सादृश्य है। 'तेलुगु' के अक्षर गोल और सुडौल होते हैं। प्राचीन कवि रामकृष्ण ने एक स्थान पर सुन्दर लिपि-लेखक के नाते विरूरि वेदाद्रि की प्रशंसा की। वास्तव में तेलुगु लिपि में एक अनोखी सुघराई भरी रहती है। वह मोतियों की लड़ी-जैसी मालूम पड़ती है।

: २ :

अति प्राचीन साहित्य

(५००—१००० ई०)

लिपि के प्रचलन से पहले ही किसी भी भाषा में साहित्य की सृष्टि हो सकती है। यह साहित्य आरम्भ में वीर-गीतों के रूप में, अथवा शृङ्गार-रस को लिये हुए ग्राम-गीतों के रूप में होता है। इस प्रकार का साहित्य स्थायी नहीं होता, लिपिबद्ध साहित्य ही स्थायित्व प्राप्त कर सकता है। तेलुगु-लिपि का प्रादुर्भाव ईसा से ८०० वर्ष पूर्व माना जाता है। ईसा से आठ शती पूर्व का लिपिबद्ध साहित्य उपलब्ध नहीं है। हम केवल गुणगविजयादित्य के दो शिला-लेखों और विजयवाड़ा के युद्धमल्ल के शिला-लेख से इसकी झाँकी पा सकते हैं।

पुराण-युग (१००१ से १३०० ई०)

नन्नय्य भट्ट—ये प्रतापी राजा राज राजनरेन्द्र (१०२० ई०) के समसामयिक थे। और थे राज-वंश के कुल-गुरु। स्वभावतः साधुशील एं वैदिक धर्म के परिज्ञाता थे। ऐसे ऋषि-कल्प कवि की लेखनी से आंध्र-कविता की अवतारणा 'महाभारत' के रूप में हुई। यही तेलुगु के प्राप्त साहित्य में पहला ग्रन्थ माना जाता है। अतः नन्नय्य भट्ट आदिकवि कहलाए।

यों तो नन्नय्य ने अपनी रचना के लिए 'संस्कृत महाभारत' को आधार रूप में लिया परन्तु इन्होंने इस बृहद् ग्रन्थ का यथातथ्यात्मक अनुवाद नहीं किया। फलतः निरे अनुवाद की शुष्कता न होकर इनके ग्रन्थ में एक स्वतन्त्र कृति का पूरा आस्वाद प्राप्त होता है।

यह समय वैदिक संस्कृति के लिए अनुकूल था। राज राजनरेन्द्र वैदिक धर्मावलम्बी थे। उस समय तक ऐसे काव्य की नितान्त आवश्यकता थी जो एक साथ ब्राह्मण-पंडितों में आदर पा सके और जनता में वैदिक धर्म की ओर श्रद्धा बढ़ा सके। 'महाभारत' इस प्रयोजन की पूर्ति के लिए अत्यन्त उपयुक्त था। वह इतना विस्तृत एवं इतने आख्यानों और उपाख्यानों से परिपूर्ण है कि हर प्रकार के मनुष्य को उसमें रुचिकर सामग्री मिलती है। नन्नय्य ने इसी कारण से तत्सम-बहुला शैली को अपनाया। इनकी रचनाओं में दो तिहाई शब्द संस्कृत के मिलते हैं। इनकी शैली नवनीत-सी कोमल एवं परिमार्जित है। इनके दूसरे ग्रन्थ हैं—(१) 'आंध्र शब्द चिन्तामणि', (२) 'इन्द्रसेन विजयमु', (३) 'चामुण्डिका विलासमु'। परन्तु इनके कर्तृत्व के विषय में बड़ा मतभेद है। 'आंध्र शब्द चिन्तामणि' तेलुगु का पहला व्याकरण-ग्रन्थ है। इसकी रचना संस्कृत में है। तेलुगु-साहित्य के इतिहास में यह एक अनोखी घटना थी कि इसके प्रथम कवि ही प्रथम वैयाकरण सिद्ध हुए। 'वागनुशासन' के नाम से ये प्रख्यात थे। बड़े खेद की बात है कि महाकवि नन्नय्य समग्र 'भारत' की रचना नहीं कर सके। इन्होंने केवल आदि पर्व और सभा पर्व पूर्ण तथा अरण्य पर्व के कुछ अंश ही लिखे। कदाचित् इनके जीवन का सूत्र तब तक कट गया हो। नन्नय्य की सुशीतल कविता का यह पद्य देखिए :

"शारद रात्रुलुज्ज्वल लसत्तर तारक हारपंक्तुलन् जारु तरंबुलय्ये विकसन्नव कैरव गन्ध बन्धुरोदार समीर सौरभमु दाल्चि सुधांशु विकीर्यमाण कर्पूरपराग पांडुरुचिपूरमुलम्बर पूरितम्मुलै।"

अर्थात् शरद् की रातें नक्षत्र रूपी हार-पंक्तियों से उज्ज्वल हो रम्य हुईं। विकसित कल्हारों की सुगन्ध से भरा हुआ समीर विचरने लगा। चाँदनी की

छटा ऐसी थी, मानो चन्द्र अपनी किरणों से कपूर-रज छिटका रहा हो।

निःसन्देह तेलुगु के आदिकवि नन्नय्य की कविता भी जैसी मनोहर छटा छिटका रही है, वैसी ही निर्मल भी है। वह परवर्ती कवियों का पथ-प्रदर्शन करने वाली है और काव्य-सौरभ से महक उठने वाली है।

कहा जाता है कि आदिकवि नन्नय्य भट्ट को अपने साहित्यिक अनुष्ठान में पूरा-पूरा सहयोग नारायण भट्ट नामक एक प्रकांड पंडित के द्वारा मिला।

वेमुलवाड भीम कवि—इनका निवास-स्थान द्राक्षाराम के पास 'वेमुलवाडा' था। समय अनिश्चित है। व्यक्तित्व और जीवन के चारों ओर विस्मयजनक घटनाओं का वायु-मण्डल घिरा हुआ है। कहते हैं कि इन्होंने 'राघव पांडवीयमु' नामक एक द्वयर्थि-काव्य तथा 'कविजनाश्रयमु' नामक लक्षण-ग्रन्थों का प्रणयन किया था। आजकल इनके कुछ फुटकर पद्यों के अलावा कोई काव्य-ग्रन्थ प्राप्त नहीं।

नन्नेचोड कवि—कविराज शिखामणि नन्नेचोड की जन्म-तिथि के विषय में मत-मतान्तर प्रचलित हैं। कोई विद्वान् इनको नन्नय्य के परवर्ती मानते हैं तो कोई सदियों परवर्ती, और कोई नन्नय्य के सामसामयिक। ये केवल तेलुगु के ही नहीं प्रत्युत कन्नड़ आदि भाषाओं के भी पारंगत विद्वान् थे, विशेषतः कन्नड़ का प्रभाव इन पर स्पष्ट लक्षित होता है। इनकी कृति 'कुमार सम्भव' में शैली और भाषा-सम्बन्धी विशेषताएँ बहुत हैं। एक ओर नन्नय्य ने अपनी कृति के द्वारा पौराणिक कविता का सूत्रपात किया तो दूसरी ओर नन्नेचोड ने अपनी लेखनी के द्वारा काव्य तथा प्रबन्ध-मार्ग का संचालन किया। षष्ठ्यन्त और कुकवि-निंदा आदि भी पहले-पहल इनकी कृतियों में दृष्टिगोचर होते हैं। इन्होंने उद्भट कवि की कृति का अनुसरण किया। इनकी काव्य-शैली एक ओर संस्कृत-शब्दों एवं समासों से भरपूर है तो दूसरी ओर कन्नड़ी शब्दों से भी अनुप्राणित है।

अथर्वणाचार्य—इन्होंने एक स्थान पर 'हेमचन्द्र' का स्मरण किया है। हेमचन्द्र का समय १०८८ से ११७२ ई० तक माना जाता है। अतः ये हेमचन्द्र के परवर्ती हो सकते हैं। इनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थ माने जाते

हैं—(१) 'अथर्वण कारिकावली' (व्याकरण), (२) 'महाभारत का अनुवाद' और (३) 'अथर्वण छन्द'। 'महाभारत' की रचना-शैली संस्कृत-बहुल थी। अपनी दुरूहता के कारण यह ग्रन्थ अधिक प्रचार न पा सका। दूसरा कारण यह भी था कि अथर्वण जैन थे, अतः वैदिक धर्म के पुनरुत्थान के उस काल में इनकी रचना अनादृत हुई थी।

पालकुरिकि सोमनाथ कवि—कवि सोमनाथ प्रथम प्रतापरुद्र के समसामयिक थे। वरंगल के राजा प्रतापरुद्र (११४०-११६६) के द्वारा इन्होंने कई गाँव इनाम में पाए थे। ये वीर शैव मत के थे। फलतः इन्होंने वीर शैव धर्म की कई पुस्तकें तेलुगु में लिखी थीं। इनमें १. 'पण्डिताराध्य चरित्रमु', और २ 'बसवपुराणमु' मुख्य हैं। इनमें देशी छन्द द्विपदा का प्रयोग किया गया है। यह छन्द वैसी राष्ट्रीयता अथवा देशीयता लिये हुए है जैसी अवधी में चौपाई, राजस्थानी में छप्पय और व्रज भाषा में कवित्त आदि। उन दिनों शैव और ब्राह्मण धर्मों के विरुद्ध वीर शैव धर्म उठ खड़ा था। इस दृष्टि से देखने पर सोमनाथ एक विप्लवकारी साहित्य के उन्नायक थे। केवल साहित्यिक दृष्टि से देखने पर भी इन ग्रन्थों का कम महत्त्व नहीं। सभी सहृदय पाठकों को इनमें तेलुगु का ठेठ मिठास मिलता है। इन्होंने कन्नड़ में भी कुछ ग्रन्थ लिखे थे। 'अन्यवाद कोलाहलम्' तथा 'सोमनाथ भाष्यम्' आदि इनके संस्कृत के ग्रन्थ भी प्राप्त हैं। इससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि सोमनाथ का संस्कृत, तेलुगु और कन्नड़ भाषाओं पर प्रबल अधिकार था। सोमनाथ में धर्म की चिन्ता के साथ-साथ समग्र साहित्यिक वैभव के दर्शन भी हमें होते हैं। अतः तेलुगु के साहित्यिक महारथियों में सोमनाथ का सम्मानपूर्ण स्थान है।

भद्र भूपति—राजकवि भद्र सन् १०७० के आस-पास वर्तमान थे। कृष्णा-मण्डल के कोई सामन्त राजा थे। इनकी 'नीतिसार मुक्तावली' तथा 'सुमति शतकमु' नामक दो पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। 'सुमति शतकमु' अपने सूक्ति-कथन के लिए आज तक जनता में अत्यन्त लोकप्रिय है। ये सूक्तियाँ लोक-जीवन के अपार अनुभव के बल पर लिखी गई हैं :

"एप्पुडु संपद गलिगिन
नप्पुडु बंधुवुलु वत्तुरदि येद्लनिनन्
देप्पलुग जेस्वुनिंडिन
गप्पलु पदिवेलु जेरु गदरा सुमती।"

अर्थात् जब धन-दौलत इकट्ठी होती है, तब हमारे यहाँ बन्धु जमा होते हैं, जैसे तालाब के लबालब पानी से भरने पर मेंढक हजारों की संख्या में एकत्रित होते हैं।

भास्कर रामायण—जैसे तेलुगु के 'महाभारत' की रचना एक कवि के द्वारा न हो पाई वैसे ही 'भास्कर रामायण' की रचना भी एक कवि के द्वारा सम्पन्न न हुई। मल्लिकार्जुन भट्ट, कुमार रुद्रदेव, भास्कर, हुलक्कि भास्कर और अय्यलार्य के सहयोग से यह कृति पूर्ण हुई। इसकी शैली की मधुरिमा स्तुत्य है। फलतः इसका प्रचार घर-घर में है। कथावाचक आज दिन भी ग्रामों के मन्दिरों में इस रामायण को गा-गाकर सुनाते हैं और जनता में रामायण के प्रति श्रद्धा बढ़ाते हैं। यह कृति 'साहिणि मार' नामक किसी राजा को समर्पित थी। इसका एक पद इस प्रकार है :

"जंगम वल्लुलो, अमृत सागर वीचुलो, रत्न मूर्तुलो
अंगजु मोहनास्त्रमुलो अंचित हेमशलाकलो, मही
रंग नटत्तटिल्लतलो राजकलासखुलो यनंग,द—
न्वंगुलु वाद्य संगतुल नाड्चु बाड्चु बुण्डिरत्तरिन्।"

अर्थात् स्त्रियाँ वाद्यों के सहारे नाच रही हैं। उस समय वे ऐसे झलक रही हैं मानों संचारिणी लताएँ हों, अमृत-सागर की वीचियाँ हों, मूर्त रत्न हों, मन्मथ के अस्त्र हों, सुवर्ण की शलाकाएँ हों, धरातल पर नाचने वाली विद्युल्लताएँ हों, और चन्द्र-कला की सहेलियाँ हों।

तिक्कन्न सोमयाजी—तेलुगु-साहित्य की महान् विभूति तिक्कन्न, नन्नय्य से दो सदी पीछे हुए थे। वे मनुमसिद्धि एवं वरंगल के राजा गणपति देव के समकालीन थे। इनके पिता कोम्मानामात्य और माता अन्नमांबा थीं। पिता गुण्टूर के प्रभु थे। इस प्रकार तिक्कन्न का जन्म पाण्डित्यपूर्ण

तथा वैभवी परिवार में हुआ था। ये समदर्शी कवि थे। 'हरि' और 'हर' में ये कोई भेद नहीं मानते थे। अतः ये भगवान् का ध्यान हरिहरात्मक रूप में करते थे। हरिहरनाथ के नाम पर इन्होंने अपनी कृति 'महाभारत' को समर्पित भी किया है। तिक्कन्न की प्रथम कृति 'निर्वचनोत्तर रामायण' राजा मनुमसिद्धि को समर्पित थी। इसमें चम्पू-शैली के गद्य की कड़ियाँ (जो इतिवृत्त को जोड़ने के लिए प्रयुक्त होती हैं) छोड़ दी गई हैं। इस काव्य का अन्तिम भाग परवर्ती कवि जयन्ति राम भट्ट के द्वारा जोड़ा गया।

इनकी प्रधान रचना 'महाभारत' है। तिक्कन्न ने इसे विराट पर्व से लेकर अन्त तक रच डाला। अरण्य पर्व शेष का अनुवाद स्वनामधन्य एर्रा प्रगड कवि ने तिक्कन्न के अनन्तर किया। इस प्रकार तेलुगु में 'महाभारत' तीन महाकवियों के द्वारा तीन सदियों में पूर्ण हुआ। अनुवाद होने पर भी, तिक्कन्न ने स्वातन्त्र्य से काम लिया और औचित्य को ध्यान में रखकर यदि इतिवृत्त का वर्णन कुछ जगहों में बढ़ाया तो और जगहों में घटाया भी था। क्या भाषा, क्या भाव दोनों पर इनका पूरा अधिकार था। मानवीय प्रवृत्तियों का सूक्ष्म अनुभव इनमें था, साथ-ही-साथ इनमें अनुभूतियों को मार्मिक तथा प्रभावशाली ढंग से प्रकट करने की अद्भुत क्षमता भी थी। ये निस्सन्देह विश्व-कवि कहला सकते हैं। उनके निम्न छन्द से काव्य की विशिष्टता का परिचय मिलता है :

"सिंगंबाकटिमै, गुहान्तर मुनन् जेड्पाड्ड मैयुरिड, मा
तंगस्फूर्जित यूधदर्शन समुद्यत्क्रोध मैवच्चु नो
जं, गान्तारनिवास खिन्नमति, नस्मत्सेन पै वीडे, व
च्चें गुन्तीसुतमध्यमुण्डु समरस्थेमाभिरामाकृतिन्"

अर्थात् अर्जुन युद्ध की सज-धज में हमारी सेना पर टूट ही पड़ा। वह ऐसा दिखाई दे रहा है जैसे भूखा सिंह, गुफा में बड़े काल तक रहकर, हाथियों के झुण्ड को देखकर उद्यत्क्रोध से उस पर लपकता है। अर्जुन भी अब तक जंगलों में रहने से विषण्ण मन वाले हैं। इनकी दूसरी रचनाएँ 'कवि वाग्बंधनमु', 'विजय सेनमु' और 'कृष्णशतकमु' हैं। पर इनका यथेष्ट प्रचार

नहीं है। 'उभयकविमित्र' तथा 'कविब्रह्म' आदि इनकेअनेक नाम हैं। इनके शिष्य मूलघटिक केतन्न भी सत्काव्य के निर्माण में कुशल थे। इस प्रकार तिक्कन्न केवल कवि ही नहीं, कवि-निर्माता भी थे।

रंगनाथ रामायणमु—इस कृति के प्रणेता के विषय में बड़ा मतभेद है। रंगनाथ या कोनबुद्धा रेड्डी इस कृति के रचयिता थे। यह 'द्विपदा' छन्द में लिखी गई। इसकी कथा का निर्वाह सुबोध शैली में लोकोक्तियों के सहारे हुआ है। 'वाल्मीकि रामायण' का अनुकरण व अनुसरण करते हुए भी कवि ने यत्र-तत्र स्वतन्त्रता और मौलिकता से काम लिया है। इसमें मेघनाद की पत्नी 'सुलोचना' का प्रसंग नव्यता और भव्यता के साथ चित्रित हुआ है। 'सुलोचना' अपनी शील-संपदा में सीता की समकक्षिणी है। बुद्ध भूपति के दोनों पुत्रों (काचविभु और विट्ठल राजु) ने इसके उत्तर काण्ड की रचना की है।

सारांश यह है कि इसमें कथा की रोचकता और भाषा की प्रांजलता सराहनीय है।

राविपाटि तिप्पन्न—इन्होंने संस्कृत में 'प्रेमाभिरामम्' नामक रचना की थी तथा तेलुगु में 'मदन विजयमु', 'रति शास्त्रमु', 'अंबिका शतकमु' और 'त्रिपुरान्तकोदाहरणमु' आदि काव्य लिखे। तिप्पन्न तेलुगु-काव्य में अपनी शैली की विशेषता के लिए प्रसिद्ध हैं। 'त्रिपुरान्तकोदाहरणमु' एक उदाहरण-काव्य है। इस काव्य में आठ विभक्तियों का प्रयोग तीन बार होता है। पहली बार आठ विभक्तियों का प्रयोग करते हुए आठ छन्द लिखे जाते हैं। तदनन्तर आठ कलिकाएँ इसी प्रकार लिखी जाती हैं। फिर आठ उत्कलिकाएँ आठ विभक्तियों का प्रयोग करके लिखी जाती हैं। एक-एक छन्द में एक ही विभक्ति का प्रयोग होता है। अन्त में एक ही छन्द में आठ विभक्तियों का प्रयोग होता है। साधारणतया उदाहरण-काव्य भक्तिपरक होते हैं। इसमें 'त्रिपुरान्तक' की स्तुति की गई है।

एर्रा प्रगड—इनके पिता सूरनार्य तथा माता पोतांबा थीं। इनके गुरु का नाम शंकर था, जो शम्भूदास भी कहलाते थे। इनके लिखे हुए ग्रन्थों

में 'रामायणमु', 'अरण्य पर्व शेष', 'लक्ष्मी नृसिंह पुराणमु' और 'हरिवंशमु' आदि मुख्य हैं। 'अरण्य पर्व शेष' तथा 'नृसिंह पुराणमु' की रचना सन् १३१५-१३२७ के बीच तथा 'रामायण' एवं 'हरिवंश' की रचना १३४० ई० तक समाप्त हुई होगी। 'अरण्य पर्व शेष' की रचना करके 'महाभारत' को अन्तिम स्पर्श (Final Touch) देने का श्रेय इन्हींको दिया जा सकता है। यही कारण है कि ये 'तेलुगु-साहित्य' के 'कवि-त्रय' में स्थान पा सके। इनकी काव्य-शैली में न तो संस्कृत-बहुल शब्दों का प्रयोग हुआ है और न तद्भव शब्द ही अधिक मिलते हैं। दोनों का समन्वय इनकी शैली में है। 'लक्ष्मी नृसिंह पुराणमु' अहोबिल के नरसिंह स्वामी के श्री चरणों में समर्पित है। 'हरिवंश' भी प्रसिद्ध एवं प्रचलित ग्रन्थ है। इनकी शैली का एक उदाहरण देखिये :

"स्फुरदरुणांशु राग रुचि बोंपिरि वोयि निरस्त नीरदा
वरणमुलै, दलत्कमल वैभव जृम्भण मुल्लसिल्लनु
द्धुरतर हंस सारस मधुव्रत निस्वनमुल् सेलंगे ना
गरमुवेलिंगे, वासर मुखंबुलु शारदवेल जूडगन्।"

अर्थात् शरद् ऋतु के दिनों में सूरज के अरुण राग में शोभा घट गई। आकाश मेघ-हीन था। कमल का वैभव नष्ट हुआ। केवल हंसों, सारसों और मधुव्रतों का नाद चारों ओर गूँजने लगा। इस प्रकार शरत् के दिन प्रकाशित होने लगे।

नाचन सोमन्न—ये एर्रन्न के समसामयिक थे। १३४४—१३७० के बीच वर्तमान थे। इन्होंने 'उत्तर हरिवंशमु' की रचना की है। तिक्कन्न के प्रति इनकी श्रद्धा अटल थी। उन्हींकी भाँति सोमन्न ने अपनी कृति श्री हरिहरनाथ के चरणों में समर्पित की थी। एर्रन्न तथा सोमन्न की काव्य-कुशलता के विषय में पण्डितों में बड़ा मतभेद है। एर्रन्न ने पुराण-साहित्य के उपयुक्त शैली का अवलम्बन किया तो सोमन्न ने काव्योचित शैली का। फलतः सोमन्न की कृति में कवि-प्रतिभा-जनित कल्पनाओं की सजावट प्रचुर मात्रा में है। लोकोक्तियों तथा मुहावरों का भी सुचारु प्रयोग

इन्होंने अपने काव्य में किया है। इनकी दूसरी कृति 'वसंत विलासमु' मानी जाती है, जो अनुपलब्ध है।

केतन्न—केतन्न तिक्कन्न के शिष्य थे। इनकी 'दशकुमार चरितमु', 'विज्ञानेश्वर' तथा 'भाषा भूषण' आदि कृतियाँ प्रमुख हैं। पहली कृति एक संस्कृत-ग्रन्थ का पद्यानुवाद है। इनकी कविता में कोमल कान्त पदावली की सुन्दर आयोजना है। केतन्न की विशिष्टता इस विषय में है कि जनता में रुचि-वैचित्र्य उत्पन्न करने के लिए वे पुराणों की पुरानी अनुवाद-पद्धति को छोड़कर एक नये रास्ते पर चले। 'विज्ञानेश्वर' धर्म-शास्त्र-सम्बन्धी ग्रन्थ है। 'भाषा-भूषणमु' एक लक्षण-ग्रन्थ है। इस प्रकार ये एक साथ कवि तथा आचार्य दोनों थे।

मारन्न—मारन्न तिक्कन्न के दूसरे शिष्य थे। इनके द्वारा 'मार्कण्डेय पुराण' का सुन्दर अनुवाद हुआ है। इसमें उपाख्यानों की बहुलता है। अतः परवर्ती कवियों ने उससे अनेक कथा-वस्तुओं को स्वीकार करके स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे। इससे मारन्न के ग्रन्थ की महत्ता ज्ञात होती है।

जक्कय्य—ये अन्नयामात्य के पुत्र थे। इनका प्रसिद्ध काव्य 'विक्रमार्क-चरित्र' है। कविता प्रौढ़ तथा जटिल है। कथा के नायक विक्रमार्क (विक्रमादित्य) थे। इन पर अतिमनुष्यता का रंग चढ़ा दृष्टिगत होता है।

विन्नकोट पेद्दन्न—इनका निवास-स्थान विशाख-मण्डल का 'पंच धारलु' है। इनका समय सन् १४०७ ई० के आस-पास है। ये आचार्य कवि थे। इनका 'काव्यालंकार चूड़ामणि' नामक ग्रन्थ बड़ा ही प्रसिद्ध है। 'प्रतापरुद्रयशो भूषण', 'काव्यादर्श' तथा 'रस-मंजरी' आदि संस्कृत के रीति-काव्यों की सहायता से इन्होंने अपने इस ग्रन्थ का प्रणयन किया था। इनका यह ग्रन्थ अलंकार आदि साहित्य के विभिन्न अंगों पर समुचित प्रकाश डालता है; अतः अत्यन्त उपादेय है।

गौरन्न मंत्री—इनके पिता का नाम अय्यल मन्त्री तथा माता का पोचांबा है। इन्होंने संस्कृत में 'लक्षणदीपिका' तथा तेलुगु में 'हरिश्चंद्रोपाख्यानमु' और 'नवनाथचरित्रमु' नामक काव्य लिखे।

इनके तेलुगु के काव्यों में द्विपदा छन्द अधिक प्रयुक्त किया गया है। 'हरिश्चंद्रोपाख्यान' इनका बड़ा ही प्रसिद्ध काव्य है। 'स्कंद पुराण' की कथावस्तु ही इसका आधार है। 'नक्षत्रक' के पात्रों की सर्जना नितान्त मौलिक है। हरिश्चंद्र की कथा पुराणों में भिन्न-भिन्न रीतियों से वर्णित है। 'देवी भागवत', 'ऋग्वेद' तथा 'स्कंद पुराण' में इतिवृत्त की विभिन्नता पाई जाती है। गौरन्न की देखा-देखी परवर्ती कवि वीरशरभ और शंकर कवि ने भी अपने काव्यों का निर्माण वृत्त-शैली में ही किया।

'नवनाथ चरित्रमु' में नौ सिद्धों की कथाएँ अभिवर्णित हैं। यह काव्य श्री शैल मल्लिकार्जुन को समर्पित किया गया है। इनमें वर्णित सिद्ध पुरुष इस प्रकार हैं—१. शिवनाथ, २. मीननाथ, ३. सारंगधर, ४. गोरक्षनाथ, ५. मेघनाद, ६. नागार्जुन, ७. सिद्धबुद्ध, ८. विरूपाक्ष तथा ९. कणिक। पुस्तक की शैली अत्यन्त सरस और भाषा परिमार्जित है।

पुराण-युग के साहित्य का समालोकन

नन्नय्य भट्टु ने चालुक्य राजा राज राजनरेन्द्र (१०२० ए. डी.) के आश्रय में रहते हुए उनकी ही प्रेरणा के बल पर वैदिक धर्म का मुख उज्ज्वल करते हुए अपनी कृति 'महाभारत' का प्रणयन किया तो तेलुगु-वाङ्मय की रूप-रेखाएँ निखर आईं। धार्मिक धरातल पर नन्नय्य ने बौद्ध एवं जैन धर्मों पर प्रबल आघात पहुँचाया।

दूसरी ओर देशी साहित्य की प्रगति वीर शैव धर्म का आश्रय लेकर अबाध गति से होने लगी। इस परंपरा के उन्नायक पालकुरिकि सोमन्न थे। नन्ने चोड कवि में देशी तथा मार्ग-कविता (नन्नय्य-परंपरा की) का सम्मिलन हम देख सकते हैं। इसी युग में सोमन्न के द्वारा 'शतक-साहित्य' का श्री गणेश भी हुआ। शतक-कविता में प्रबोध एवं उपदेश की प्रधानता अधिक और काव्य-कला का महत्त्व कम है। ऐतिहासिक धरातल पर १००० से सन् १२०० ई० तक चालुक्य-युग कहा जा सकता है। इस समय आंध्र-वाणी का क्रीड़ा-स्थल राजमहेन्द्रवर था।

प्रसन्न गंभीर गोदावरी की अमलिन धारा के साथ-साथ आंध्र-वाणी की मधुर धारा भी बहने लगी। अब दोनों क्रमशः जनता के शारीरिक तथा मानसिक ताप मिटा रही हैं। इस युग में सन् १२०० से १३८० ई० तक काकतीय राजाओं के आश्रय में आंध्र-कविता पनपने लगी। अतः इसको ऐतिहासिक धरातल पर काकतीय-युग कहा जा सकता है।

बरंगल पर राज्य करने वाले गणपति देव तथा प्रतापरुद्र द्वितीय इस समय के पराक्रमी राजा थे। तेलुगु-साहित्य की उन्होंने बड़ी सेवा की थी। इस समय में भी कवि पुराणों का अनुवाद ही करते थे। तिक्कन्न का 'महाभारत', मारन्न का 'मार्कंडेय पुराण', मडिकिसिंगन्न का 'पद्म पुराण', एर्रन्न तथा सोमन्न के 'हरिवंश' आदि उज्ज्वल उदाहरण हैं। यहाँ ध्यान देने योग्य एक विषय है। इन कवियों में से किसी ने भी निरे अनुवाद के रूप में अनुवाद नहीं किया। इनमें मौलिक प्रतिभा की झलक भी जगह-जगह पर है। 'द्विपदा' शैली का प्रवाह इस उत्थान (१२००-१३८०) में भी अबाध गति से चला, परन्तु उसकी आत्मा बदल गई। गौरन्न आदि कवियों ने इतिवृत्त का स्वीकार वैदिक तथा पौराणिक साहित्य से ही किया। अर्थात् वीर शैव धर्म के घेरे से यह शैली मुक्त हुई। इसी समय रीति-ग्रन्थों का निर्माण पहले-पहल हुआ। व्याकरण, छन्द तथा अलंकार आदि पर ग्रन्थों का प्रणयन हुआ। पुराणों में उपलब्ध उपाख्यानों को लेकर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जाने लगे। उदाहरण तथा शतक-साहित्य का विकास भी तिप्पन्न के द्वारा इस समय हुआ। इस समय साहित्य देवी के क्रीड़ा-स्थल प्रधानतः नेल्लूर, राजमहेन्द्रवर, बरंगल, तथा अद्धंकि थे।

: ३ :

काव्य-काल

(१४००—१७०० ई०)

प्रथम उत्थान : रेड्डि युग

प्रमुख कवि

महाकवि श्रीनाथ—ये कमलनाभामात्य के पौत्र तथा मारयामात्य के पुत्र थे। इनकी माता का नाम पोतांबा था। महाकवि तिक्कन्न के अनन्तर श्रीनाथ एक ऐसी साहित्यिक विभूति थे जिनकी बराबरी करने वाला कोई दूसरा कवि नहीं हुआ। इनका सारा जीवन राजाओं-महाराजाओं के सभ्य-समाजों में कविता-प्रसंगों में व्यतीत हुआ। इनके आश्रयदाता प्रधानतः कोंडवीड़ु तथा राजमहेन्द्री के रेड्डि राजा थे। जितने ऐहिक भोग-विलासों का इन्होंने अनुभव किया उतना किसी दूसरे तेलुगु-कवि ने नहीं। इनका कनकाभिषेक तक हुआ था। इनका साहित्यिक जीवन अतीव महत्त्वपूर्ण है। श्रीनाथ ने अपनी कृतियों के बारे में स्वयं यह लिखा है : "छोटी उम्र में ही मैंने 'मरुत्तराट् चरित' लिखा, नई जवानी की पहली सीढ़ी में ही 'शालिवाहन सप्तशती' लिखी, पूर्ण यौवन की दशा में 'नैषध-काव्य' का आंध्रानुवाद हुआ। प्रौढ़ वय में 'भीम खण्ड' की रचना की, अभी वय के ढल जाने से पहले ही मैं 'काशी-खण्ड' का भी अनुवाद करूँगा।" इनमें 'शालिवाहन

सप्तशती' और 'मरुत्तराट् चरित' आजकल उपलब्ध नहीं हैं। 'शृङ्गार नैषध' संस्कृत के 'नैषधीय चरित' का प्रौढ़ अनुवाद है। यह मामिडि सिंगनामात्य को समर्पित है। 'हर विलासमु' अवचि तिप्पय्य को समर्पित है। तिप्पय्य श्रीनाथ के बाल-सखा थे। 'हर विलासमु' में श्रीनाथ ने परमेश्वर की लीलाओं का अच्छा वर्णन किया है। कालिदास के श्लोकों का भावानुवाद भी बड़ा सरस बन पड़ा है। यह कृति श्रीनाथ की भावना-शक्ति तथा लोकज्ञता का सुन्दर उदाहरण है। 'भीम पुराण' की शैली प्रौढ़ तथा परिमार्जित है। द्राक्षाराम भीमेश्वर का वर्णन है। 'काशी-खण्ड' भी अनुवाद ही है। कविता इसमें ऊँची श्रेणी की है। 'शिवरात्रि-माहात्म्यमु' की रचना शिथिल है।

'पल्नाटि वीरचरित्रम्' द्विपदा छन्द में लिखी गई एक अमर कृति है। इसमें कवि की मौलिक प्रतिभा के दर्शन होते हैं। कथावस्तु तेलुगु-प्रदेश के राज-वंशों की है। वीर रस का अच्छा परिपाक हुआ है। समय-समय और जगह-जगह की इनकी चाटूक्तियाँ तेलुगु प्रान्त में बहुत लोकप्रिय हैं। इनके द्वारा तत्कालीन समाज के रहन-सहन और आचार-विचारों का परिचय मिलता है। इन्हींके द्वारा लोगों में यह भ्रम भी पैदा हो गया कि ये उत्तान शृङ्गार के पुजारी तथा शील-च्युत हैं।

श्रीनाथ का बुढ़ापा दरिद्रता में व्यतीत हुआ। बोड्डु पल्लि ग्राम में रहकर खेती-बारी करने की नौबत आई। कहाँ वे श्रीनाथ, जिनके कविता-गान के सुखद श्रवण के लिए राजाओं के आस्थानों में हजारों पण्डित इकट्ठे होते थे तथा जिनका मूर्ध कनकाभिषेक से सींचा हुआ था और कहाँ ये श्रीनाथ, जो अपनी शिथिल देह को किसी-न-किसी प्रकार सँभालते हुए मुट्ठी-भर चावल पैदा करने की कोशिश में हल जोतने वाले। सुख के उत्तुङ्ग शृङ्ग से श्रीनाथ का जीवन-भानु अगाध दारिद्र्य के समुद्र में अस्तंगत हुआ। जीवन का आनन्द इन्होंने खूब चखा; इतना कि अन्त में विष का घूँट पीना पड़ा। जो-कुछ भी हो, श्रीनाथ की कविता हर के जटा-जूट से विनिर्गत गंगा की भाँति अविरल वेग तथा पवित्र वाग्धारा लिये हुए है, जिसमें अवगाहन करने

से पाठकों का मन परितृप्त होता है।

विनुकोंड वल्लभरायलु—ये नियोगि ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम त्रिपुरांतक तथा माता का चन्द्रमांबा था। इन्होंने 'क्रीड़ाभिरामम्' नामक एक वीथी-नाटक लिखा था। वीथी नाटक एक अंक का ही होता है और कोई पुरुष उत्तम, मध्यम या अधम नायक कल्पित कर लिया जाता है। आकाश-भाषित के द्वारा संवाद चलता है। यह शृङ्गार-प्रधान है। प्रताप रुद्र द्वितीय के समय में वरंगल का जो वैभव था उसका जीता-जागता चित्रण इसमें है।

भैरव कवि—भैरव गौरन्न कवि के पुत्र थे। इनका रचना-काल सन् १४१० से सन् १४६० तक है। 'श्रीरंगमाहात्म्यमु', 'रत्नशास्त्रमु' और 'कविराज गजांकुशमु' इनकी कृतियाँ हैं। भैरव कवि की शैली मोहक और सरस है। 'रत्नशास्त्रमु' ८० छन्दों का छोटा-सा काव्य है, जिसमें रत्नों के भेद-प्रभेदों का अभिवर्णन है। तीसरा पिंगल-शास्त्र का ग्रन्थ है।

अनन्तामात्य कवि—इनका जन्म नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम तिक्कनामात्य तथा माता का मल्लम्मा था। इनका रचना-काल सन् १४३४ के आस-पास है। इन्होंने 'भोजराजीयमु' 'रसाभरणमु' और 'छंदोदर्पणमु' नामक तीन ग्रन्थ लिखे हैं। इनमें से पहली कृति सबसे उत्तम है, यह सात आश्वासों में पूरी हुई है। यह काव्य अहोबिल नरसिंह स्वामी के श्री चरणों में समर्पित है। इसकी रचना 'विक्रमार्क-चरित' के अनुकरण पर हुई है। अतः कथावस्तु पर अतिमानुषता का रंग (Super natural element) पोता गया। जहाँ तक कविता का सम्बन्ध है, वह रमणीय वर्णनों तथा मुहावरों के रुचिर प्रयोगों से भरी हुई है, जिससे काव्यार्थ की शोभा से सहृदयों के हृदय चमत्कृत हो जाते हैं। अनंतामात्य सहज संवादों के निर्वहण तथा मानसिक प्रवृत्तियों के सूक्ष्म विश्लेषण में परवर्ती महाकवि पिंगलि सूरन्न के पथ-प्रदर्शक हुए। 'रसाभरणमु' में रसों का उल्लेख और 'छंदोदर्पणमु' में छंदों का वर्णन किया गया है।

ताल्लपाक अन्नमाचार्य—अन्नमाचार्य, अन्नमय्य अथवा अन्नय्य नन्दवरीक वैदिक ब्राह्मण-वंश में सन् १४२८ ई०में पैदा हुए थे। बचपन से

ही ये इन सांसारिक झंझटों से कुछ खिंचे रहते थे। घर-बार छोड़कर अन्नमय्य तिरुपति-क्षेत्र की ओर निकल पड़े थे। कहा जाता है कि इन्हें भगवान् वेंकटेश्वर जी (बाला जी) के दर्शन सोलह वर्ष की उम्र में ही हो गए थे। जन्म से स्मार्त होने पर भी यह श्री वेंकटेश्वर के लीला-वैभवों से इतने आकृष्ट हुए कि इन्होंने वैष्णव गुरु शठकोपयति से वैष्णव धर्म की दीक्षा ली। भक्तिमय मधुर जीवन बिताकर अन्नमाचार्य जी सन् १५०६ ई० में फागुन कृष्णा द्वादशी को परम धाम सिधारे।

अन्नमाचार्य जी ने हिन्दी-साहित्य-गगन के सूर्य सूरदास की भाँति हजारों पद रचे थे। आजकल इनमें से १२००० पद उपलब्ध हैं। ये सब ताँबे के पत्रों पर लिखे गए थे। अधिकांश पद शृङ्गारपरक होने के कारण कृष्ण-भक्ति से आप्लावित हैं। इनकी शृङ्गारिक रचनाओं में सहज मधुरिमा है; भद्दी वासना नहीं। ये संस्कृत के उद्भट पंडित तथा संगीत के पारंगत थे। पदों के अलावा इन्होंने 'द्विपद रामायणमु' 'शृङ्गार-मंजरी' तथा 'वेंकटाचल माहात्म्यमु' आदि ग्रन्थ लिखे। भाषा-शैली सर्वथा स्वतन्त्र है। बोल-चाल की भाषा में ही इन्होंने पद लिखे। ये पहले-पहल तेलुगु-साहित्य के क्षेत्र में पद-साहित्य की भागीरथी की अवतारणा कराने वाले भगीरथ सिद्ध हुए। इनके सारे पद श्री वेंकटेश्वर के चरणों में समर्पित हैं।

पिल्ललमर्रि पिनवीरन्न—पिनवीरन्न नियोगि ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम गादयामात्य था। सन् १४६० ई० से सन् १५०० तक इनका रचना-काल माना जा सकता है। इनकी कृतियों में 'अवतार दर्पणमु' 'नारदीय पुराणमु', माघ माहात्म्यमु', मानसोल्लास सारमु', 'शकुन्तला-परिणयमु' तथा 'जैमिनि भारतमु' आदि उल्लेखनीय हैं इनमें 'शकुन्तला-परिणयमु' अतीव प्रसिद्ध है। महाकवि कालिदास के नाटक के आधार पर बहुत कम परिवर्तनों के साथ कवि ने इसकी रचना बड़ी सफलता के साथ की है। 'जैमिनि भारतमु' संस्कृत-ग्रन्थ का अनुवाद है। पिनवीरन्न की काव्य-शैली मनमोहक है। कई स्थलों पर इन्होंने कवि सार्वभौम श्रीनाथ की शैली का अनुकरण किया है। आगामी प्रबन्ध-परंपरा के स्पष्ट आभास इन दोनों के

काव्यों में हमें मिल जाते हैं। युग की प्रवृत्ति बदल गई थी; पुराण-शैली से काव्य-शैली का युग आ चुका था। आगे चलकर यही काव्य-शैली से परिणत होकर प्रबन्ध-शैली में विकसित हुई।

दूबगुण्ट नारायण कवि—इनका जन्म भी नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। माता नागमांबा और पिता ब्रह्मनामात्य थे। इन्होंने संस्कृत-'पंचतन्त्र' का अनुवाद पद्य-काव्य के रूप में किया और उदयगिरि पर राज्य करने वाले बसवराजु को समर्पित किया। कवि का समय एक शिला-लेख के आधार पर सन् १४८० के आस-पास निश्चित होता है।

'पंचतन्त्र' जगत्-प्रसिद्ध कथाओं की खान है। यह दुनिया-भर की भाषाओं में अनूदित हुआ है। ऐसे काव्य का सरस अनुवाद करके नारायण कवि ने आन्ध्र-वाणी के चरणों में एक अमूल्य वस्तु की भेंट की। इसमें १. मित्र-भेद, २. मित्र-लाभ, ३. संधि-विग्रह, ४. लब्धनाश, तथा ५. अविमृशकारित्व नामक पाँच खण्ड हैं। नारायण कवि की शैली मृदुल तथा मनमोहक है।

दग्गुपल्लि दुग्गय्य—ये नियोगी ब्राह्मण थे। इनके पिता तिप्पनार्य तथा माता एर्रम्म थीं। ये महाकवि श्रीनाथ के साले थे। इनके रचे हुए ग्रन्थों में केवल 'नासिकेतोपाख्यान' उपलब्ध है। इसकी रचना सन् १४६५ ई० में हुई होगी। दुग्गय्य कवि श्रीनाथ के शिष्य भी थे। परन्तु गुरु तथा शिष्यों की मनःप्रवृत्तियों में अपार अन्तर पाया जाता है। जब कि गुरु शृङ्गार रस के लोलुप थे, शिष्य ने अपनी रचना के द्वारा शान्त रस की ओर आकृष्ट अपनी मनः प्रवृत्ति का परिचय दिया। 'नासिकेतोपाख्यान' की कथा 'कठोपनिषद्' की कथा से थोड़ा अन्तर रखती है, परन्तु सदल मिश्र की कथा से बड़ा मेल खाती है। शृङ्गार-प्रधान युग में शान्त रस का काव्य लिखकर दुग्गय्य ने अपने व्यक्तित्व का परिचय दिया। इनकी काव्य-शैली प्रसन्न और गम्भीर है।

नन्दि मल्लय्या तथा *घंट सिंगय्या*—ये दोनों नियोगी ब्राह्मण थे। मल्लय्या सिंगनामात्य के पुत्र थे। घंट सिंगय्या का दूसरा नाम मलय मारुत

कवि था। ये मल्लय्या कवि के भागिनेय थे। इन्होंने गंगयामात्य को स्वरचित 'प्रबोध चन्द्रोदय' नामक काव्य समर्पित किया। यह संस्कृत नाटक का तेलुगु में कथानुवाद है। इसमें अद्वैत तत्त्व का प्रतिपादन अच्छी तरह हुआ है। सदा से मनुष्य के हृदय में अच्छी प्रवृत्तियों पर बुरी प्रवृत्तियों का आक्रमण होता आया है और इस संघर्ष से मनुष्य का मन चंचल हो उठता है। इसीका काव्यात्मक चित्रण इसमें है। इन कवियों ने 'वराह पुराण' का भी अनुवाद करके इसे तुलुव नरसरायलु को समर्पित किया। तुलुव नरसरायलु जगत् प्रसिद्ध राजा श्री कृष्णदेवरायलु के पिता थे। 'वराह पुराण' में पर्व-त्योहार, व्रत-नियम आदि के बारे में लिखा गया। श्री कृष्णदेवरायलु के समय में प्रबन्ध-शैली का विकास चरम सीमा तक पहुँच गया था, अतः इसमें भी प्रबन्ध-शैली के विकास के प्रथम लक्षण भरपूर मिलते हैं। कवियों ने यत्र-तत्र ठेठ तेलुगु के छन्द भी लिखे हैं।

वेन्नेलकंटि सूरन्न—इनका जन्म नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इन्होंने 'विष्णु पुराण' का अनुवाद करके राघव रेड्डि को समर्पित किया था। इनका समय सन् १५२६ के आस-पास माना जाता है। ये बड़े ही विनयशील कवि थे। कहते हैं कि संस्कृत में 'विष्णु पुराणम्' सबसे पुराना ग्रन्थ है। इसके पूर्व खण्ड में विष्णु भगवान् की अवतार-कथाएँ अभि-वर्णित हैं और उत्तरार्ध में व्रत-नियम, वेदान्त, ज्योतिष आदि विषयों का वर्णन है। इन्होंने पूर्वार्ध को लेकर ही अत्यन्त सरस और सरल अनुवाद किया था। इसमें प्रह्लाद ने अपनी शक्ति की महिमा से पिता को भी बड़ा व्यक्ति बना डाला है। श्रीकृष्ण के जीवन का सहज विकास इस ग्रन्थ में देखने को मिलता है। इनकी काव्य-शैली में सहज मृदुलता तथा कुसुम-समान कोमलता है।

वेमन्न—(सन् १४१२–१४८० ई०) इनके समय और जन्म-स्थान के विषय में कई मत प्रचलित हैं। किसी के अनुसार ये पन्द्रहवीं सदी में उत्पन्न हुए थे, तो किसी के अनुसार सत्रहवीं सदी में। किसी के अनुसार ये मूगचिंतपल्ले के निवासी थे तो किसी के अनुसार कटारुपल्ले के। इनका जन्म

रेड्डि-कुल में हुआ था।

आंध्र देश में कदाचित् ही कोई ऐसा व्यक्ति होगा जिसकी जबान पर वेमन्न का कोई-न-कोई छन्द न नाचता हो। प्रचलित दन्त-कथा के अनुसार वेमन्न अपनी जवानी में अत्यन्त कामुक प्रकृति के थे। ज्ञानोदय होने पर वे घर-बार छोड़कर भगवत्पदार्थ तथा ब्रह्म-ज्ञान की चिन्ता में योगियों में जाकर मिल गए थे। इनके गुरु का नाम लम्बिका शिवयोगी था। हठ योग में उनकी विशेष प्रवृत्ति थी। अतः वेमन्न ने भी योग-सम्बन्धी उलटबासियाँ लिखीं। उनकी एक उलटबासी निम्न है :

"नाद मलर जेसि नादं बु वोंगिंचि
भेद मितलेक बेनगिनपुडु
पारु कालव वलेनु पारुरा ईनादु
विश्वदाभिराम विनुर वेम।"

नाद को सन्तुष्ट करने और नाद को बढ़ाने के लिए बिना अन्तर के जब साधना की जाती है, तब एक झरने की तरह यह नाद प्रवाहित होगा। समय बीतने पर इनका मन हठ योग से हट गया-जैसा प्रतीत होता है। बाद में उनका झुकाव राज योग के पक्ष में हो गया था। यहाँ तक कि इन्होंने हठ योग की निंदा भी जी खोलकर की है :

"आसनमुलु पन्नि अंगंबु बिगिबिंचि
योडलु विरुचु कोनेडु योगमेल्ल
जेट्टि सामुकन्न चिंता कुतक्कुव।"

अर्थात् जिस योग में आसन जमाकर अंगों को अकड़ाकर शरीर को तोड़ना-मरोड़ना पड़ता है, वह एक पहलवान की कसरत-मात्र है।

वेमन्न निर्गुणोपासक कवि थे। इनकी सामाजिक भावना और भी विद्रोहात्मक थी। इनकी रचनाओं में जात-पात-सम्बन्धी विचारों के लिए तनिक भी गुञ्जाइश नहीं थी। बुतपरस्ती के ये कट्टर विरोधी थे। इनकी यह भी मान्यता थी कि साधकों के मार्ग में स्त्री एक बाधा स्वरूपिणी है :

"गतुलु सतुल वलन गानंग लेरया"

नारियों से मोक्ष गति का विधान नहीं प्राप्त किया जा सकता। उपवास तथा एकादशी व्रत आदि के बारे में अपनी रचनाओं में इन्होंने पर्याप्त कटु शब्दों का प्रयोग किया है। वेद-शास्त्रों पर भी इनकी आस्था नहीं थी। वेमन्न की उक्तियों की एक-मात्र विशेषता स्पष्टवादिता है, जो अन्य कवियों में कम ही पाई जाती है। इनकी इस स्पष्टवादिता के पीछे भावों का उद्रेक अथवा उद्वेग प्रबल रूप से विद्यमान है। अतएव इनकी कविता में सर्वत्र प्राण-शक्ति का अद्भुत संचार देखने को मिलता है। सारांश यह है कि इन्होंने धार्मिक अन्ध-विश्वासों को आमूल-चूल उखाड़कर सामाजिक कुरीतियों पर कटु व्यंग के प्रखर बाण छोड़े। इनकी सूक्तियों की भाव-भूमि में इनकी सूक्ष्म ग्राहिका-शक्ति की स्पष्ट छाप मिली है। यही कारण है कि इनकी कई सूक्तियाँ आज-कल भी लोकोक्तियों की भाँति आंध्र देश में सर्वत्र व्यवहृत होती हैं।

इनकी विशेषता इस बात में भी है कि इन्होंने एक उदार पंडित की भाँति अपनी रचनाओं में दीर्घ छन्दों को न अपनाकर अत्यन्त सरल, सुबोध तथा संक्षिप्त शैली को ही ग्रहण किया। वास्तव में वेमन्न ने कभी कागज और कलम लेकर नहीं लिखा। ये मौखिक रूप में ही कहते जाते थे। बाद में शिष्यों ने इनके पद्यों का संग्रह किया होगा। इनके प्रिय छन्द 'आट-वेलदि' और 'कंद' थे। दोनों छन्द छोटे किन्तु अत्यन्त प्रभावपूर्ण हैं। इनकी रचनाओं की मुख्य-मुख्य शिक्षाएँ इस प्रकार हैं—१. चोरी मत करो, २. सदा दूसरे जीव-जन्तुओं पर दया करो, ३. दूसरों को पीड़ा मत पहुँचाओ तथा ४. यथालाभ सन्तोष से रहो। वेमन्न-जैसे जो दूसरे तत्त्व-चिन्तक कवि तेलुगु में हुए उनमें पोतुलूरि वीर ब्रह्मु, दूदेकुल सिद्धरय तथा यज्ञरामदास प्रमुख हैं।

हिन्दी-साहित्य के कबीर और तेलुगु-साहित्य के कवि वेमन्न में पर्याप्त समानता है, परन्तु हमारी सम्मति में समाज पर कबीर-जैसा व्यापक प्रभाव वेमन्न का कभी नहीं पड़ा। दूसरा मुख्य अन्तर यह है कि कबीर की सामाजिक साधना में हिन्दू-मुसलमानों की एकता प्रधान है जब कि वेमन्न के सामने ऐसा कोई विकट प्रश्न था ही नहीं। हाँ, अक्खड़पन तथा भण्डाफोड़

करने में दोनों बराबर ही थे। जहाँ तक भाव-धारा की बात है, इन दोनों की एकरसता अवगाह्य है।

वेमन्न की जीवन-लीला की समाप्ति के बारे में भी अनेक जन-श्रुतियाँ हैं। एक जन-श्रुति के अनुसार ये पामूरु की एक गुफ़ा में प्रविष्ट होकर अन्तर्धान हुए थे तो दूसरी के अनुसार इनकी समाधि जिले कडपा के कटारिपल्ले नामक स्थान में आज तक है। जो कुछ भी हो, इनका अमर स्थान जनता के हृदय में, इनकी धार्मिक भावनाओं के बल पर चाहे न हो, पर कम-से-कम सुतीक्ष्ण भावों से मिश्रित इनके हास्य तथा नीति-कथन के लिए तो अवश्य है।

बम्मेर पोतन्न—पोतराजु (पोतन्न) का जन्म नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम केसन मन्त्री था। माता लक्कसानम्मा थीं। इनके गुरु के विषय में कोई बात मालूम नहीं हुई। ये बड़े ही विनय-शील और भक्त कवि थे। इनकी कृतियों में 'आंध्र महाभागवत', 'वीरभद्रविजयमु', 'भोगिनी दण्डकमु' और 'नारायण शतकमु' आदि प्रमुख हैं। इनके आखिरी तीनों ग्रन्थों के कर्तृत्व पर पण्डितों में बड़ा मतभेद है।

पोतन्न सन् १४८० के आस-पास वर्तमान थे। इनके जन्म-स्थान के बारे में भी पहले बहुत मतभेद प्रचलित थे, परंतु आजकल के अधिकांश पण्डितों की राय में वरंगल ही इनका जन्म-स्थान माना जाता है। 'वीर भद्र विजय' की काव्य-शैली 'महा भागवत' की सुरम्य शैली के सामने फीकी-सी लगती है। इसमें शिव-सम्बन्धी कथा का अभिवर्णन है। 'भोगिनी दण्डक' सर्वज्ञ द्वितीय की आज्ञा से लिखा गया था। इसमें वेश्याओं के भ्रकुटि-विलासों तथा भाव-भंगिमाओं का रोचक वर्णन है। समालोचकों का एक वर्ग पोतन्न के निष्कलंक शील पर धब्बा लग जाने के भय से इस विषय पर विश्वास ही नहीं करता। इस वर्ग का मत है कि भक्त पोतन्न ने, जिनके हृदय में मनुजेश्वरों के प्रति कोई श्रद्धा नहीं थी और जिन्होंने अपने भागवत को केवल भगवान की प्रेरणा से ही लिखा, कभी ऐसा नहीं किया होगा।

इनमें एक तो एक राजा को समर्पित है, दूसरी बात यह है कि इसमें एक घृणित वस्तु पर कवि ने कलम चलाई है। इसका स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है कि कदाचित् कवि ने जीवन की आरम्भिक दशा में ही, जब कि बुद्धि अथवा ज्ञान का परिपाक नहीं होता तथा उल्टे यौवन की तरंगें हृदय में विलासपूर्ण भावों को उद्बुद्ध करती हैं, इसे लिखा होगा। इसमें कुछ भी असंभव दिखाई नहीं देता।

'नारायण शतक' में नारायण की संबुद्धि पर लगभग सौ वृत्तों की रचना है। जनता में इसका भी यथेष्ट समादर है। 'महा भागवत' की रचना के द्वारा महाकवि पोतन्न ने तेलुगु-साहित्य में अमृत की धारा बहाई है। वैसे तो इन्होंने संस्कृत से इसका अनुवाद किया था, परन्तु यह 'अनुवाद के लिए अनुवाद' नहीं था।

पूर्णिमा की एक रात को चाँद चाँदनी की शीतल छटा छिटका रहा था। ऐसे सुहावने समय पर जब नजदीक की नदी में स्नान करके, पोतन्न नदी के तट पर आसीन हो महेश्वर के ध्यान में लगे हुए थे तब भगवान् श्री रामचन्द्र जी ने प्रकट होकर उन्हें आज्ञा दी कि मेरे नाम पर भागवत की रचना समर्पित करो। इस पर आनंदातिरेक से पोतन्न के तन-मन पुलकित हो उठे और उसी दिन से वे भागवत की रचना करने लगे। षष्ठ्यन्त पद्यों में श्रीकृष्ण का सम्बोधन किया गया। इस घटना के वर्णन द्वारा महा कवि जनता को व्यंग्य रूप से यही दिखाना चाहते थे कि शिव, श्रीराम, तथा श्रीकृष्ण आदि देवी-देवताओं में कोई अन्तर नहीं है। ये सब एक ही शक्तिमान् भगवान् के विविध रूप हैं। इससे पोतन्न की अद्वैत भावना का परिचय मिलता है।

प्रत्याख्यान के भय के बिना हम निस्संकोच यह कह सकते हैं कि साहित्यिक महत्ता के साथ-साथ जो सार्वजनीन प्रचार इस ग्रन्थ को मिला है वह किसी दूसरे ग्रन्थ को नहीं। इस विषय में हम 'तुलसी रामायण' से इसकी तुलना कर सकते हैं।

सूरदास और पोतन्न—जहाँ सूरदास के 'सूर सागर' की भाँति पोतन्न

का भागवत अपने माधुर्य के लिए तेलुगु में प्रख्यात है, वहाँ वह दो विषयों में अपनी विलक्षणता भी रखता है। एक तो इसमें समूचे भागवत का अनुवाद क्रम-विधान से हुआ जब कि 'सूर सागर' में दशम स्कंध को छोड़कर दूसरे स्कंधों का अनुवाद यथेष्ट रूप में नहीं मिलता। दूसरी बात यह है कि पोतन्न का अनुवाद पद्यमय है जब कि सूरदास की रचना पदमय। एक में काव्यगत गुणों की अधिकता है तो दूसरे में संगीत-प्रवणता की महत्ता। एक भक्तिपूर्ण काव्य-रसायन है, जिसे पढ़-पढ़कर लोग लोट-पोट हो जाते हैं; तो दूसरा भक्तिपूर्ण संगीत-सुधा, जिसे गा-गाकर लोग आनन्द का अनुभव करते हैं। सूरदास के दशम स्कंध के विस्तृत वर्णन का श्रेय उनकी वल्लभ-सम्प्रदायी धार्मिक प्रवृत्ति को दिया जा सकता है। पोतन्न इस साम्प्रदायिकता के घेरे से परे थे, अतएव सब अवतारों की लीलाओं के प्रति वे समदर्शी थे।

फलतः पोतन्न के ग्रन्थ में जो सम्पूर्णता और सर्वांगीणता है वह सूरदास के ग्रन्थ में कहाँ? हाँ, जब कि पोतन्न ने बाल-लीलाओं का यथा-मूल वर्णन किया तब सूरदास ने मनमोहक एवं विस्तृत वर्णन किया। इसके मूल में भी सूरदास की भक्ति-भावना के साथ-साथ वही धार्मिक भावना काम कर कर रही थी; क्योंकि वल्लभ सम्प्रदाय के उपास्य देव बालकृष्ण हैं। सूरदास ने भ्रमर-गीत प्रसंग को लेकर सरल भक्ति का अमृत-प्रवाह बहाया है। इसके दो प्रमुख कारण हैं। एक तो ऐतिहासिक तथा सामाजिक आवश्यकताएँ ऐसी थीं कि जनता का मन अलख निरंजन की साधना से ऊब चुका था। उनको किसी ऐसे सगुण भगवान् का आश्रय चाहिए था, जिसमें वे परम सौन्दर्य तथा आनन्द का अनुभव कर सकते। जिस पर भरोसा रखकर, जिसके साथ वे बे-रोक-टोक क्रीड़ा-विनोद कर सकते। महाकवि सूरदास ने तृषित तथा शोषित जनता के हृदय में श्रीकृष्ण का सरस मनोहर रूप प्रविष्ट किया।

वास्तव में तेलुगु के भक्त कवि पोतन्न सेव्य-सेवक-भाव के भक्त थे। अतएव इनकी रचना की सहज मधुरिमा प्रह्लाद, अंबरीष, ध्रुव, तथा गजेन्द्र आदि भक्तों के उपाख्यानों में विशद रूप में मिलती है। ऐसे अवसरों पर कवि ने अपना हृदय सहृदय पाठकों के सामने बाँट रखा है। सारांशतः यही

निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि पोतन्न की कृतियों में सम्पूर्णता तथा सर्वांगीणता अधिक है। उनके कथा और उपकथाओं के वर्णन में एक क्रम-बद्ध शृङ्खला पाई जाती है। सूरदास की कृति में एकांगीपन है। परन्तु अपने क्षेत्र में सूरदास की लेखनी बेजोड़ है। अस्तु!

पोतन्न की रस-स्निग्ध वाणी का परिचय उनके निम्न लिखित पद में मिलता है:

"मंदार मकरंद माधुर्यमुन देलु
मधुपंबु वोवुने मदनमुलकु
निर्मल मंदाकिनी वीचिकल दूगु
रायंच जनुने तरंगिणुलकु
ललित रसाल पल्लव खादियै चोक्कु
कोयिल सेरुने कुटजमुलकु
पूर्णेन्दु चन्द्रिका स्फुरित चकोरकं
बरुगुने सांद्र नीहारमुलकु
अंबुजोदर दिव्य पादारविंद
चिन्तनामृत पान विशेष मत्त
चित्त मेरीति नितरंबु जेर नेचु
विनुत गुणशील माटलु वेयुनेल"

अर्थात् क्या कभी मंदार-सुमनों के मकरंद की मधुरिमा का स्वाद लेने वाला भ्रमर नीम के पेड़ों की ओर चलेगा (कदापि नहीं)? मन्दाकिनी की निर्मल वीचिकाओं पर तैरने वाला हंस क्या कभी छोटी नदियों में जायगा? कोमल रसाल-पल्लवों को खाकर मदमस्त होने वाला कोकिल क्या कभी मामूली वृक्षों पर बैठेगा? क्या कभी पूर्णिमा के उज्ज्वल चाँद की शीतल किरणों को खाने वाला चकोर ओस की बूँदों पर आसक्त होगा? ऐसे ही श्री विष्णु भगवान् के पादारविंदों की सुधा का आस्वादन करने वाला मन दूसरे विषयों पर कैसे आसक्त होगा?

हम कवि की वाणी में हाँ-में-हाँ मिलाते हुए यह भी कह सकते हैं कि

जो लोग (तेलुगु वाले) पोतन्न की कविता का आस्वादन करते हैं वे दूसरों की कविता में सरलता से आनन्द-विभोर नहीं हो सकते।

ईश्वर फणि भट्ट—(१४००–१५०० ई०) इनका जन्म वैदिक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। ये ईश्वरभट्ट तथा रामांबा के पुत्र थे। इन्होंने 'परतत्त्व रसायनमु' नामक एक वेदान्तपरक ग्रन्थ काव्य के रूप में लिखा था। उसमें कई स्थानों पर इन्होंने अपने गुरु सदानन्द यति और भगवान् में अभेद माना। वेदान्तपरक ग्रन्थ होने पर भी इसमें काव्य की रमणीयता भी बहुत-कुछ है।

अडिदमु नीलाद्रि कवि—नियोगि ब्राह्मण थे। इनके प्रभु पूसपाटि तम्मिराजु थे। अपने राजा पर इन्होंने 'रण-रंग-विजयमु' नामक एक काव्य लिखा था।

पिडुपर्ति बसव कवि—वीर शैव थे। इन्होंने 'प्रभुलिंगलीललु' नामक एक काव्य लिखा।

प्रथम उत्थान का समालोकन

इस उत्थान में प्रधानतः हम यह देख सकते हैं कि श्रीनाथ आदि कवियों ने केवल पुराण का अनुवाद ही न करके पुराणांतर्गत शृङ्गार तथा नैषध आदि खण्डों का अनुवाद भी किया। इस समय की विलक्षण प्रवृत्ति यह है कि कवि संस्कृत-नाटकों का काव्यानुवाद करते थे। उदाहरण के रूप में हम 'शृङ्गार-शाकुन्तलम्' और 'प्रबोध-चन्द्रोदयम्' को ले सकते हैं। इस काल में कुछ कवियों ने मौलिक काव्यों की भी रचना की। अनन्तामात्य का 'भोजराजीय' इसका एक ज्वलंत उदाहरण है। शृङ्गारी कविता की प्रधानता होने पर भी इसमें से कुछ ऐसे कवि हुए, जिन्होंने केवल शांतरसमयी रचनाओं की सृष्टि की। 'नासिकेतोपाख्यान' और 'प्रबोध-चन्द्रोदयम्' इस काल की ऐसी ही शान्त-रस-प्रधान रचनाएँ हैं। मौलिक वीर काव्य 'पलनाटिवीर चरित्र' इस समय की गरिमामयी रचना है। इस समय की सबसे महत्त्वपूर्ण घटना अन्नमाचार्य का पद-साहित्य है। इसी

उत्थान ने वेमन्न तथा पोतन्न-जैसे प्रधान रचयिताओं को उत्पन्न किया था। इन दोनों में कितना अन्तर है ? इनमें से एक तर्क-वितर्क की जटिलता में पड़कर निर्गुण ब्रह्म की उपासना करने वाला और सामाजिक कुरीतियों का भण्डाफोड़ करने वाला था तो दूसरा सुशीतल भक्ति-रसायन बहाकर झगड़ों से, वाद-विवादों से दूर रहने वाला और भगवान् श्री रामचन्द्र के चरणों की शरण लेने वाला था। एक प्रखर वाणी के द्वारा लोगों को वशीभूत करना चाहता था तो दूसरा संयमित मधुर वाणी के द्वारा जनता को मुग्ध कर देता था। संक्षेप में हम यही कह सकते हैं कि इस उत्थान में ही साहित्य के आँगन में श्रीनाथ-जैसे राजसी कवि, वेमन्न-जैसे तर्कशील कवि, पोतन्न तथा अन्नमय्य-जैसे भक्त कवि और दुग्गय्य-जैसे शान्ति-प्रिय कवियों ने अपनी प्रतिभा के ज्वलन्त कण बिखेरे हैं।

द्वितीय उत्थान : रायलु-युग

प्रमुख कवि

श्री कृष्ण देव रायलु —(१५०६–१५३० ई०) इतिहास-प्रसिद्ध श्री कृष्ण देव रायलु का जन्म सन् १४८५ के आस-पास हुआ होगा। इनके पिता तुलुव नरस नायक थे और माता का नाम नागांबा था।

रायलु विजयनगर की राज-गद्दी पर अगस्त सन् १५०६ में अभिषिक्त हुए। इनका विवाह चार स्त्रियों के साथ सम्पन्न हुआ था। इनमें दो रानियाँ (तिरुमल देवी और चिन्ना देवी) अत्यन्त प्रसिद्ध थीं। चिन्ना देवी जन्म से वेश्या समझी जाती थीं और तिरुमल देवी पट्ट-महादेवी थीं। आजकल भी तिरुपति श्री वेंकटेश्वर जी के मन्दिर में तिरुमल देवी, चिन्ना देवी और श्रीकृष्ण रायलु की धातु-मूर्तियाँ मौजूद हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि रायलु ने दक्षिणा-पथ में हिन्दू-महासाम्राज्य को बढ़ाकर मुसलमानों के आक्रमणों से हिन्दू-मन्दिरों और जनता की प्रशंसनीय रक्षा की थी। उनका अपार राज-वैभव था। उस समय जनता ऐश-आराम में धन-दौलत से समय काटती थी। इस महा साम्राज्य रूपी सागर के कर्णधार महा मेधावी

'तिम्मरुसु' ही थे।

साहित्यिक महत्त्व —बड़ी विचित्र बात यह है कि शत्रु राजाओं के साथ युद्ध में निरत रहते हुए भी रायलु अपने आस्थान में पण्डितों और कवियों का पर्याप्त आदर-सत्कार करते थे। इन्हें तेलुगु-साहित्य का 'भोजराज' कहा जाता है। 'भुवन-विजय' में दिग्गज कहे जाने वाले जो आठ महाकवि रहा करते थे, उनमें अल्लसानि पेद्दन्न, तिम्मन्न और धूर्जटि का नाम सबसे प्रसिद्ध है। तेलुगु-कवियों के साथ-साथ रायलु ने संस्कृत तथा कन्नड-कवियों का भी अपूर्व सत्कार किया था।

रायलु स्वयं कवि थे। इनके संस्कृत-ग्रंन्थ ये हैं—१. 'मदालस-चरित्र', २. 'सत्यावधू प्रीणनम्', ३. 'सकल कथासार संग्रहम्', ४. 'ज्ञानचिंतामणि' और ५. 'रस-मंजरी'। तेलुगु में इन्होंने 'आमुक्त माल्यदा' की रचना की थी। इनका संस्कृत-नाटक 'जांबवती-परिणय' इस समय भी उपलब्ध है।

इस काल की प्रमुख कृति 'आमुक्त माल्यदा' की रचना सन् १५२१ई० में हुई थी। इसमें आश्वासों के अन्त में गद्य न लिखकर पद्य लिखे थे। तेलुगु-साहित्य में आश्वास के अन्त में पद्य रखना एक अपूर्व प्रयोग था। इस काव्य में सात आश्वास हैं। संक्षेप में इसकी कथा का सार निम्न है—

श्री विल्लि पुत्तूरु नामक पुण्य नगर में मन्नारुदास स्वामी का मन्दिर था। इस गाँव में विष्णुचित्त नामक एक वैष्णव भक्त रहते थे। वे भगवान् की पूजा-अर्चना आदि करते हुए अपनी जीविका चलाते थे। उनके यहाँ अतिथि-सत्कार का बड़ा प्रचलन था। विरक्त होने पर भी वे स्वभाव के बड़े मृदुल थे। अपने घर में वे लकड़ी का ढेर लगा देते थे, जिससे कि बरसात के मौसम में उनकी पत्नी को तकलीफ न उठानी पड़े।

एक बार पाण्ड्य देश के राजा ने एक सभा की घोषणा कराई। सभा में प्रान्त-प्रान्त के उद्भट पण्डित सम्मिलित हुए। इसमें कौन-सा धर्म (अद्वैत, द्वैत अथवा विशिष्टाद्वैत ?) सबसे उत्तम है, इसका निर्णय होने वाला था। मन्नारुदास स्वामी ने विष्णुचित्त को आज्ञा दी कि तुम विशिष्टाद्वैत अथवा वैष्णव धर्म की प्रशस्ति में बोलो। विष्णुचित्त झेंप गए और

उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की कि मैं शास्त्र-ग्रंथों से नितान्त अनभिज्ञ हूँ। मन्दिर में सेवा करने-भर की योग्यता मुझमें है, सभा-समाजों में पण्डितों के विरुद्ध विवाद करने की क्षमता मुझमें कहाँ? परन्तु जब भगवान् ने एक न मानी तो विष्णुचित्त पाण्ड्य राजा की सभा में उपस्थित हुए। भगवान् की कृपा से वे वैष्णव मत की उत्तमता की पुष्टि कर सके। जब विष्णुचित्त विजयी होकर लौटे तो भगवान् ने यामुनाचार्य की लम्बी कथा कह सुनाई।

एक दिन विष्णुचित्त को उद्यान में एक कन्या मिली। विष्णुचित्त की देख-रेख में वह कन्या पनपने लगी। यही प्रसिद्ध भक्तिन अण्डाल थीं। गोदा देवी अथवा अण्डाल ने श्री रंगेश के अलावा और किसी से विवाह न करने के लिए मन में निश्चय किया। वे प्रतिदिन पुष्प-मालाओं से अपने को सजाती थीं और तदनन्तर भगवान् को उन मालाओं से अलंकृत करती थीं। अपनी सौन्दर्य-सुषमा की झलक वे तालाब के निर्मल जल में देख लेती थीं। श्री रंगेश गोदा की मधुर भक्ति पर रीझ गए। विष्णुचित्त की अनुज्ञा लेकर रंगेश ने गोदा के साथ परिणय कर लिया।

गोदा के पूर्व जन्म से सम्बन्ध रखने वाली 'मालदासरि कथा' भी इस में अभिवर्णित है। काव्य की शैली प्रौढ़ है। इसमें जनता के साधारण जीवन का भी रोचक वर्णन हुआ है; जिससे यह सिद्ध होता है कि रायलु की कवि-प्रतिभा की पहुँच राजा के अन्तःपुर तक ही सीमित न रहकर जनता के जीवन तक भी थी। काव्य-वस्तु से यह प्रमाणित होता है कि ये धर्मशील राजा थे। तेलुगु-साहित्य का महान् लाभ यह हुआ है कि साधारण अन्ध परम्परा से मध्य-युग के राजाओं पर उनके भोग-विलास तथा कामुक होने का जो आक्षेप किया जाता है, उसका निराकरण हो गया।

देश और भाषा पर समान अधिकार रखने वाले इन राजाओं में श्रीकृष्ण देव रायलु का स्थान सर्वोत्तम है। ये एक साथ 'साहिती समरांगण चक्रवर्ति' कहलाए। इनके द्वारा ऋतुओं का विशद वर्णन हुआ। ये राज-कवि कृति-प्रणेता ही नहीं थे, कृति-भर्ता भी थे। अल्लसानि पेद्दन्न ने

'स्वारोचिष-मनु-चरित्र' तथा तिम्मन्न ने 'पारिजातापहरण' नामक काव्य लिखकर इन्हें समर्पित भी किये थे। इस प्रकार रायलु के राजत्व-काल में तेलुगु-जनता की राष्ट्रीय प्रतिभा का विकास चरम सीमा पर पहुँच गया। साहित्यिक प्रतिभा कल्पना के स्वर्णिम पंखों पर बैठकर भावना के अम्बर में समोद विचरने लगी :

"गृहसम्मार्जनमो, जलाहरणमो, श्रृङ्गार पर्ल्यंकिका
वहनंबो, वनमालिका करणमो, वाललभ्यल श्यध्वज
ग्रहणंबो, व्यजनातपत्र-धृतियो, प्राग्दीपिकारोपमो
नृहरी, वादमुलेल लेरे यितरुल् नीलीलकु बात्रमुल्"

विष्णुचित्त भगवान् से कहते हैं, "हे भगवान्! मुझसे ये ही काम बन पड़ते हैं। घर साफ़ करना, पानी ला रखना, श्रृङ्गार-पालकी ढोना, पुष्प-मालाएँ गूँथना, व्यजन डुलाना तथा बत्ती जलाना आदि। अतः हे हरि! मेरा वाद-विवादों से क्या मतलब! मुझे क्यों बना रहे हो? तुम्हारी लीला का पात्र दूसरा कोई नहीं है?"

अल्लसानि पेद्दन्न—(१४७०–१५३२ ई०) इनका जन्म नन्दवरीक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। ये चोक्कनामात्य के पुत्र थे। इनके गुरु का नाम शठकोपयति था। पेद्दन्न का स्थान रायलु की सभा में सर्व प्रथम था। ये संस्कृत तथा आंध्र के भारी विद्वान् थे। इनके लिखे हुए ग्रन्थों में 'मनु-चरित्र' अथवा 'स्वारोचिष मनु सम्भव' को छोड़कर अन्य ग्रन्थ काल के कराल गाल में विलीन हो गए।

लक्षण-ग्रन्थों में प्रबन्ध अथवा महाकाव्य के जो लक्षण दिये गए हैं उन पर कसने से यह प्रबन्ध ठीक नहीं उतरता। इसका मुख्य नायक प्रवर एक ब्राह्मण और वरूथिनी एक गंधर्व स्त्री थी। कथा का केन्द्र-बिन्दु इनसे खिसककर स्वरोचि पर जा लगा है। स्वरोचि का प्रेमी हृदय भी बँटा पड़ा है। वह भी पूर्व राग, संयोग, वियोग आदि दशाओं से न गुज़रकर अचानक विकसित हुआ है। प्रेम के क्रमबद्ध विकास के लिए कहीं अवकाश नहीं दिखाया गया। एक प्रकार से यह विलायती साहित्य के साहसिक प्रेम-जैसा

है। कथा का मूल स्रोत संस्कृत का 'मार्कण्डेय पुराण' है। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि तेलुगु-प्रबन्ध हू-बहू संस्कृत का अनुकरण न करके अपनी विशेषता रखता है।

क्या वर्णन-चातुर्य, क्या कल्पना की उड़ान, क्या रस की स्वच्छ स्फीत दुग्ध-धारा सभी विषयों में पेद्दन्न का 'मनु चरित्र' अद्वितीय है। अतएव श्री कृष्ण रायलु ने कवि का मान-सम्मान बहुत किया। काव्य के समर्पण-समय में राजा ने अपने हाथों कवि की पालकी उठाई। दूसरे अवसर पर जब पेद्दन्न ने आशु कविता में आधा अंश तेलुगु में और आधा अंश संस्कृत में एक लम्बी उत्पल-मालिका कह सुनाई तो राजा ने सहर्ष पेद्दन्न के बाएँ पैर में स्वर्ण-घण्टिका लगाई। पेद्दन्न 'आंध्र-कविता-पितामह' की उपाधि से विभूषित थे। इनकी भाषा प्रांजल और कविता नितान्त मंजुल है।

मादय्य गारि मल्लन्न—ये नियोगि ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम मादय्य था। इन्होंने 'राजशेखर-चरित्र' की रचना करके नादेंड्ल अप्पामात्य को समर्पित किया था। इनके निवास-स्थान का नाम अद्दंकि था। मल्लन्न का काल सन् १४७० ई० से १५३० ई० तक माना जाता है। ये रायलु की सभा में आदर के साथ देखे जाते थे। मल्लन्न की काव्य-शैली रोचक है, परन्तु भाषा-सम्बन्धी त्रुटियाँ यत्र-तत्र रह गई हैं।

नन्दि तिम्मन्न—इनका जन्म नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। ये सिंगयामात्य तथा तिम्मांबा के पुत्र थे। श्री कृष्ण रायलु की सभा में इनका अत्यन्त प्रतिष्ठित स्थान था। तिम्मन्न ने 'पारिजातापहरण' नामक एक रसपूर्ण काव्य की रचना करके उसे रायलु को समर्पित किया है। यह काव्य पाँच आश्वासों में समाप्त हुआ है। इसकी कथावस्तु में तो कुछ क्लिष्ट कल्पना नहीं है, परन्तु उसके निर्वाह में जो मोहकता है वह अद्भुत है। श्रीकृष्ण और सत्यभामा का संवाद, तथा सत्य का प्रणय-मान आदि कवि की प्रतिभा के परिचायक हैं।

तेलुगु-साहित्य में सत्यभामा का एक विशिष्ट स्थान है। चाहे सत्यभामा में राधा-जैसी मधुर भक्ति हो या न हो, रुक्मिणी-जैसा अकारण प्रेम हो या

न हों; परन्तु उसमें एक ऐसे मानसिक स्वातन्त्र्य का अनुभव पाठक अवश्य करते हैं जिससे उनके हृदयों में सत्यभामा के प्रति एक अपूर्व आकर्षण मिलता है। तिक्कन्न की द्रौपदी तथा तिम्मन्न की सत्यभामा में बड़ा सादृश्य है। वास्तव में, ये दोनों आदि काल से समस्त नारी-जाति का प्रतिनिधित्व करने वाली नित-नूतन तथा आधुनिक स्त्रियाँ हैं। इनमें स्त्री-सुलभ ईर्ष्या के साथ-साथ नारी के अदम्य आत्म-सम्मान का भाव तो है ही; साथ ही हृदयों को अभिभूत करने वाला उद्वेगपूर्ण एवं सर्वोपरि आकर्षण है। हाँ, इनकी चेष्टाओं में निरी प्रशान्ति नहीं है।

तिम्मन्न की कविता निसर्गतः माधुर्य से ओत-प्रोत है। तेलुगु और संस्कृत के शब्दों में से नवनीत के समान कोमल शब्द चुन लेने की सहज प्रतिभा इनमें अद्भुत थी। इनके काव्य में सुकुमारता सर्वत्र पाई जाती है। अतएव इनके काव्य के सम्बन्ध में 'मुक्कुतिम्मनायु' मुद्दुपल्लु' अर्थात् 'मुक्कुतिम्मन्न की मीठी वाणी' यह उक्ति जनता में बहुत प्रचलित है।

धूर्जटि—कवि धूर्जटि ने अपने जीवन के विषय में कहीं भी कोई उल्लेख नहीं किया। केवल यह मालूम पड़ता है कि ये नारायण और सिंगम्मा के पुत्र थे। कवि की उदासीनता का कारण उनकी निरीह वृत्ति थी। इन्होंने चार आश्वासों में 'कालहस्ति माहात्म्यमु' नामक एक काव्य लिखकर काल हस्तीश्वर स्वामी के श्री चरणों में समर्पित किया था। काल-हस्ति चित्तूर जिले में तिरुमल तिरुपति-क्षेत्र के निकट ही बीस मील पर है। तिरुमल तिरुपति-क्षेत्र वैष्णव-क्षेत्र है तो कालहस्ति शैव-क्षेत्र है।

एक दंत-कथा के अनुसार यह मालूम होता है कि धूर्जटि युवावस्था में बड़े ही मस्त और लापरवाह थे। वे वेश्याओं के तीक्ष्ण कटाक्षों और मीठी मुसकानों के मुहताज रहा करते थे। जब बुढ़ापे में अक्ल ठिकाने लगी तो इन्होंने ईश्वर की प्रार्थना में समय बिताया था। उनका 'कालहस्ति माहात्म्यमु' भक्ति-रस-पूर्ण ग्रन्थ है। इसमें तिन्नडु व्याध की कथा बड़ी प्रसिद्ध है।

'श्रीकालहस्तीश्वर' नाम के पीछे भी एक रोचक कहानी है। यदि

संक्षेप में कहा जाय तो उस क्षेत्र में शिव-लिंग की पूजा पहले एक मकड़ी, हाथी और साँप करते थे। अन्त में इन तीनों का निस्तार हुआ। श्री का अर्थ मकड़ी है, काल का साँप और हस्ति का हाथी है। धूर्जटि ने 'काल हस्तीश्वर' नाम से एक शतक की रचना की। यह शतक तेलुगु के शतक-साहित्य में एक अनर्घ रत्न है। इसमें कवि ने अपना भक्ति-पुलकित हृदय पाठकों के सामने उपहार के रूप में रख दिया था। धूर्जटि शतक-शैली के उन्नायक कवि समझे जाते हैं। इनकी भक्ति-भावना में अन्तःप्रवाह की भाँति वैराग्य, निर्वेद तथा सामाजिक अत्याचारों के प्रति उदासीनता की भावनाएँ भी यत्र-तत्र बिखरी पड़ी हैं।

नृसिंह कवि—नृसिंह पेद्दन्न के समसामयिक तथा प्रतिस्पर्धी समझे जाते हैं। नृसिंह कवि ने 'कवि कर्ण रसायन' नामक अपनी कृति का समर्पण श्री रंगनाथ के श्री चरणों में किया था। इसमें पुराण-प्रसिद्ध मान्धाता का वृत्त वर्णित हुआ है। कवि का यह दावा था कि उनके काव्य के श्रवण से रसिक लोग विरक्त होते हैं और वैरागी लोग रसिक होकर झूम उठते हैं। कवि की प्रतिभा में कल्पना की चातुरी अवश्य है।

ताल्लपाक चिन्नन्न—चिन्नन्न कृष्ण देव रायलु के समसामयिक थे। संकीर्तनाचार्य, पद-कविता-पितामह ताल्लपाक अन्नमाचार्य के पोते थे। ये सन् १५७० ई० तक वर्तमान थे। इनकी कृतियाँ १. 'अष्टमहिषीकल्याणमु', २. 'परमयोगिविलासमु' और ३. 'उषा-परिणय' हैं। तीनों 'द्विपदा' छन्द में लिखी गई हैं। इनके अतिरिक्त हाल ही में इनकी एक और कृति 'अन्नमाचार्य-चरित्र' प्रकाशित हुई है। 'अष्टमहिषीकल्याणमु' में कवि ने आठ महिषियों के साथ श्रीकृष्ण के विवाह का वर्णन किया है। यह काव्य श्री वेंकटेश्वर की पत्नी पद्मावती के चरणों में कवि के द्वारा समर्पित है। 'परम-योगिविलासु' में तमिलनाड के बारह अलवारों की दिव्य कथाएँ वर्णित हैं। इस प्रकार हम देख सकते हैं कि तमिल-साहित्य का प्रभाव वैष्णव-धर्म के द्वारा लोगों पर पड़ने लगा। 'अन्नमाचार्य-चरित्र' में अन्नमाचार्य की जीवनी वर्णित है। उन दिनों कवियों में ऐतिहासिक दृष्टि बहुत कम थी। ऐसी दशा

में कवि ने एक भक्त की जीवनी काव्य के रूप में लिखकर बड़ा ही सराहनीय काम किया है। इनके अतिरिक्त इनके पिता तिरुमलाचार्य, तथा चाचा नरसिंहाचार्य आदि सभी कवि थे।

अय्यलराजुरामभद्र कवि—ये भी नियोगि शाखा के ब्राह्मण और अक्कलार्य के पुत्र थे। कडपा नामक स्थान में इनका जन्म हुआ था। श्री कृष्ण रायलु के बुढ़ापे में ये नवयुवक थे। इनका जीवन सुख-चैन से व्यतीत नहीं हुआ था। दरिद्रता के चंगुलों में फँसकर ये बड़ी कठिनता के साथ जीवन-निर्वाह करते थे। इनकी पहली कृति 'सकल कथा-सार-संग्रह' रायलु की संस्कृत-पुस्तक का अनुवाद थी। पुस्तक के समाप्त होने से पहले ही रायलु की जीवन-लीला समाप्त हो गई। इनकी दूसरी कृति 'रामाभ्युदयमु' है। इसकी शैली प्रौढ़ तथा विद्वत्ता से परिपूर्ण है। इसमें कवि ने यत्र-तत्र यमक, श्लेष तथा अनुप्रास आदि शब्दालंकारों की छटा दिखलाई है। इसमें रामचन्द्र जी की कथा अभिवर्णित है। यह काव्य गोब्बूरि नरसराजु के कर-कमलों में समर्पित किया गया है। तेलुगु-साहित्य के पहुँचे हुए कवि पिंगलि-सूरन्न और रामराज भूषण इनके समसामयिक थे। कहते हैं कि रामराज भूषण तथा रामभद्र में स्पर्धा का भाव अधिक था। लोगों में इन दोनों के बारे में कई दन्त-कथाएँ प्रचलित हैं; जिनसे यही भासित होता है कि उन दिनों पंडितों में विद्या की स्पर्धा बहुत बढ़ी-चढ़ी थी और वे स्पर्धा के बल पर ही साहित्य के मन्दिर को अनेकानेक कृति-रत्नों से जगमगा देते थे।

पिंगलि सूरन्न—पिंगलि सूरन्न गौतम गोत्र के नियोगि ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम अमरन्न और माता का नाम अब्बम्मा था। पिंगलि कृष्णा जिले का एक गाँव है। प्रायः नियोगि ब्राह्मणों के आस्पद उनके जन्म-स्थान अथवा निवास-स्थान के आधार पर रखे जाते हैं। सूरन्न कवि के १. 'राघवपांडवीयमु' २. 'कलापूर्णोदयमु' और ३. 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' आदि काव्य उपलब्ध हैं।

'कलापूर्णोदयमु' नंद्याल के राजा कृष्णराजु के करकमलों में समर्पित है। कृष्णराजु का राजत्व-काल १५६० ई० के आस-पास माना जाता है। अतः

सूरन्न भी इसी समय वर्तमान थे। 'कलापूर्णोदयमु' तथा 'प्रभावती प्रद्युम्नमु' सूरन्न के प्रबन्ध-काव्य हैं। 'राघवपांडवीयमु' इनका द्व्यर्थि-काव्य है। सूरन्न ने अपने अनमोल काव्यों से तेलुगु-साहित्य का मंदिर सुसज्जित किया था। समूचे तेलुगु-साहित्य के इतिहास में सूरन्न का अपना एक विशिष्ट स्थान है।

'राघवपाण्डवीयमु' की विशिष्टता इस बात में है कि एक ही पद्य में रामायण-परक तथा भारत-परक दोनों अर्थ एक साथ मिलते हैं। इस प्रकार एक-एक पद्य में दो-दो अर्थों का समावेश करके दो भिन्न कथाओं का निर्वाह एक साथ करना कवि की बौद्धिक प्रतिभा तथा पांडित्य का ज्वलन्त उदाहरण है। एक उदाहरण लीजिए :

"एंदु वेट रारे इतरु ले मनसुतो
दार संग सुखमु दप्प द्रोचि
तकट पांडुराज यशमेन्न वैतति
क्रूर दशरथेश कुलमु रोय"

राजा दशरथ एक दिन जंगल में आखेट करने गए और वहाँ भ्रमवश उन्होंने एक ऋषि-बालक की हत्या कर दी। बाद में उसे ले जाकर वृद्ध मुनि-दम्पतियों के समक्ष रखा। दशरथ ने उन वृद्ध और अन्ध दम्पतियों से सारा हाल कह सुनाया तो वे दशरथ की निन्दा करने लगे। भारतार्थ में, ऐसे ही एक बार पांडु राजा भी शिकार खेलने गए तो वहाँ एक मुनि और उसकी स्त्री मृग-मृगी के रूप में रम रहे थे। अनजान में पांडु राजा ने उन पर तीर चलाया। मरते हुए वे पांडु राजा को खरी-खोटी सुनाने लगे। पद्य इस प्रकरण का है।

रामायणार्थः—एमनन्=क्या कहूँ। सुत=कुमार का। उदार संग सुखमु=उदार सांगत्य-सुख। तप्पद्रोच्चितिवि=दूर किया। पांडुर=स्वच्छ। अज=राजा अज का। यशमु=यश। अतिक्रूर दशरथेश=महा कठिन दशरथ। एन्न वैतिवि=परवाह नहीं की।

क्रूर कर्मी राजा दशरथ! मैं क्या कहूँ। तुमने कुमार के उदार सांगत्य

सुख से हमें वंचित कर रखा। राजा अज के स्वच्छ यश की अवहेलना की।

भावार्थः—एमनसुतो = किस मन से। दार = पत्नी का। संगम-सुखमु = रति-सुख। दप्प द्रोचितिवि = दूर किया। क्रूरदशन् = क्रूरता के साथ। रथेश = अतिरथी राजाओं का। कुलमु = समूह। रोयन् = घृणा करने की भाँति। यशमुन् = यश। एन्नवैतिवि = परवाह नहीं की। पांडुराजा = हे पांडुराजा।

हे पांडुराजा! तुमने किस मन से पत्नी के साथ जो संगम-सुख मेरा है उसे दूर किया? क्रूरता के साथ दूसरे राजा घृणा करने लायक ढंग से यश की परवाह नहीं की।

'कलापूर्णोदयमु' नामक प्रबन्ध में इनकी हार्दिक सुकुमारता और भावुक कल्पना के प्रमाण मिलते हैं। कथा में श्रृङ्गार और अद्भुत रसों का मेल है। सदियों पहले कवि ने औपन्यासिक ढंग पर इस कथा को काव्य रूप में लिखकर सचमुच अपनी क्षमता का परिचय दिया था। संस्कृत की 'कादम्बरी' इसकी समानता रखती है। इसमें कवि ने कथा का जाल ऐसा बुना है कि एक बार उसमें प्रवेश करके अन्त तक पढ़े बिना पाठक किसी आगामी घटना का अनुमान ही नहीं लगा सकता। उसकी उत्सुकता पग-पग पर बढ़ती जाती है। कथा एकदम मौलिक है। उसका स्रोत किसी पुराण में नहीं। सूरन्न की 'संवाद-शैली' इस काव्य में अद्भुत है, जिससे नाटकीय तत्त्व का समावेश हम पा सकते हैं। सौ में एक बात, यह काव्य कवि की मौलिक प्रतिभा तथा रमणीय कल्पना के लिए तेलुगु-साहित्य के इतिहास में एक विजय-पताका है। दो नलकूबर तथा दो रम्भाओं का जो आश्चर्यपूर्ण इतिवृत्त है, ईर्ष्या, अवहेलना तथा विडंबना के जो पारस्परिक संवाद हैं, उनकी तुलना हम केवल अँग्रेजी साहित्य के महाकवि शेक्सपियर की कृति 'कामेडी ऑव टू एर्डर्स' से ही कर सकते हैं। यह भी एक अनोखी घटना थी कि इंग्लैंड के शेक्सपियर और आंध्र-प्रान्त के सूरन्न समकालीन कवि थे।

इनकी तीसरी कृति 'प्रभाव ती प्रद्युम्नमु' है। इस काव्य में कल्पना की

अपेक्षा रसमयता अधिक है। यह प्रबन्ध-काव्य पाँच आश्वासों में समाप्त हुआ है। वीर तथा शृङ्गार रसों का पूर्ण समावेश इसमें किया गया है।

वज्रनाभ राक्षस राजा थे। इनकी कन्या प्रभावती सुन्दरी थी। श्रीकृष्ण के पुत्र प्रद्युम्न के साथ प्रभावती का विवाह सम्पन्न हुआ। शुचिमुखि (एक तोता) का दौत्य-कार्य चतुरता के साथ सफल हुआ है। इसमें पात्रों का वर्णन और पोषण कवि ने बड़ी सफलता के साथ किया है।

पोन्निकंटि तेलगन्न—नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता का नाम भावनार्य था। इन्होंने 'ययाति चरित्रमु' नामक एक काव्य लिखकर अमीनखाँ को समर्पित किया था। अमीनखाँ 'इकरामु' (इब्राहीम) के दरबारी थे, जिन्होंने सन् १५५० से १५८० ई० तक राज्य किया था।

तेलगन्न की कृति की विशेषता इस बात में है कि वह एक अपूर्व साहित्यिक प्रयोग था। इनका सारा काव्य ठेठ तेलुगु में लिखा गया था। इस दृष्टि से देखने पर तेलगन्न एक नवीन काव्य-परिपाटी के उन्नायक कहे जा सकते हैं। ऐसी कृति में संस्कृत-शब्दों का अभाव मिलता है। साहित्य की यह प्रक्रिया एक प्रकार से प्रबन्ध-कवियों के दुरूह वर्णनों के प्रत्यावर्तन के रूप में चल पड़ी। ठेठ तेलुगु के परवर्ती कवियों में ठेठ तेलुगु की कट्टरता भी सीमोल्लंघन कर चुकी थी। 'भारत' में ययाति की कथा रोचक है। उसका निर्वाह कवि ने अच्छी तरह से किया है।

तेनालि रामकृष्णुडु—आप अप्पय्य दीक्षित तथा तिरुमल रायलु के समसामयिक थे। ये दोनों चन्द्रगिरि के राजा वेंकटपति रायलु के राजत्व-काल में वर्तमान थे। वेंकटपति रायलु ने विजयनगर राज्य के समाप्त होने पर अपने राज्य-पीठ की स्थापना चन्द्रगिरि में की थी और सन् १५८५ ई० से सन् १६१४ ई० तक राज्य किया था। अतः इस कवि का भी यही समय माना जाता है। रामकृष्ण का दूसरा नाम रामलिंग भी था। इन दोनों के एक होने अथवा न होने में बड़ा मतभेद है। परन्तु जन-साधारण में दोनों (रामकृष्ण और रामलिंग) एक ही माने जाते हैं।

रामकृष्ण प्रथम शाखा के ब्राह्मण थे। इनके पिता का नाम रामय्य और माता का नाम लक्ष्मम्मा था। इनका जन्म 'तेनालि' में हुआ था। इनकी कृति 'पांडुरंग माहात्म्यमु' थी। इन्होंने अपने काव्य का समर्पण विरूरि वेदाद्रि के करकमलों में किया था। 'पांडुरंग माहात्म्यमु' में पांडुरंग क्षेत्र की महिमा प्रकट करने वाली कथाओं और उपकथाओं का सुन्दर वर्णन किया गया है। भिन्न-भिन्न प्रसंगों की रचना में कवि ने ऐसा कौशल दिखाया है कि बरबस उसकी प्रतिभा की प्रशंसा करने को जी चाहता है। उनके काव्य में विशेषतः निगम शर्मा की कथा बहुत प्रसिद्ध है। कथा के निर्वाह में कवि ने अद्भुत प्रतिभा तथा मनोवैज्ञानिक कुशलता से काम लिया है। रचना में कल्पना आदि काव्य-धर्मों का निर्वाह तो पूर्णतः हुआ ही है साथ ही इनमें वर्णन-चातुर्य का प्राचुर्य भी प्रशंसनीय है। मनोवैज्ञानिक कुशलता तथा धार्मिक सन्निवेशों की खरी परख इनमें बहुत है। इनके काव्य की शैली कहीं-कहीं अप्रसिद्ध शब्दों के प्रयोग से जटिल भी हो गई है। शब्द-गुम्फन की कला में रामकृष्ण अत्यन्त दक्ष तथा सफल सिद्ध हुए हैं। अतएव 'पांडुरंगविभुनि पद्गुम्भनंबु' अर्थात् 'रामकृष्ण कवि-पदगुम्फन की रमणीयता' यह उक्ति लोगों में इनकी काव्य-शैली के सम्बन्ध में एक कहावत के रूप में प्रचलित हो गई है।

'उद्भटाराध्य चरित्र' नामक एक शैव कृति भी इनकी बनाई हुई है। ये 'विकटकवि' नाम से भी विख्यात थे। ये दूसरों लोगों की खिल्ली खूब उड़ाते थे। ये इतने विनोदी स्वभाव के थे कि इनके जीवन में घटी अनेक घटनाओं से मनोविनोद की प्रचुर सामग्री एकत्रित की जा सकती है। परन्तु इनके नाम पर चली हुई अनेक दन्त-कथाओं पर सहसा विश्वास करना अत्यन्त कठिन है। ये दन्त-कथाएँ दूसरे भाषा-भाषियों और विशेषतः तमिल-भाषियों में भी प्रचलित हैं।

कंदुकूरु रुद्र कवि—रुद्र कवि विश्व ब्राह्मण (सुनार)-परिवार में पैदा हुए थे। इनका जन्म-स्थान जिला नेल्लूर का कंदुकूरु नामक ग्राम था, ये गुण्डुपल्लि भास्कर के समसामयिक थे, अतः सत्रहवीं सदी के आरम्भ में

ही इनका जन्म माना जाता है। इन्होंने 'सुग्रीव-विजय' तथा 'निरंकुशोपाख्यान' नामक दो कृतियाँ लिखी हैं। इनमें से पहला यक्ष-गान और दूसरा प्रबन्ध-काव्य है। 'निरंकुशोपाख्यान' की रचना 'वसु चरित्र' के अनुकरण पर ही की गई है। कथा निगम शर्मा की कथा-जैसी ही है। क्या कथा के प्रवाह में, क्या पद्यों के विन्यास में इन दोनों कथाओं का सादृश्य स्पष्ट है। अपनी इस कृति को रुद्र कवि ने श्री सोमेश्वरजी के श्रीचरणों में समर्पित किया था। निरंकुश का पात्र औद्धत्य, दम्भ और दुष्ट वासनाओं के अवगुण्ठन से ढका हुआ है। निरंकुश स्वयं शिव से रम्भा-सम्भोग का वर माँगता है। निर्लज्जता की भी कहीं सीमा है?

सारी कथा में एक बार भी निरंकुश अपने किये पर नहीं पछताता। यदि हम काव्य की उत्तमता की कसौटी पर कसकर इस काव्य की जाँच करें तो हमें निराश होना पड़ता है, क्योंकि इसमें जीवन के लिए उत्तम सन्देश देने की क्षमता बिलकुल नहीं है। इसके विपरीत अविकसित मानसिक दशा में रहने वाले नवयुवकों को निरी कामुकता के गर्त में ढकेलने वाली सामग्री इसमें उपस्थित है। क्या हम यह नहीं कह सकते कि इसमें निरंकुशता की आड़ में स्वयं कवि ने अपनी विश्रृङ्खल वृत्ति का परिचय दिया है?

परन्तु 'सुग्रीव-विजय' नामक यक्ष-गान की रचना द्वारा कवि ने अपने लिए शुभ्र यशो मन्दिर का निर्माण किया। इनका 'यक्ष-गान' देशी नाटक का एक प्रयोग है। तेलुगु-साहित्य के इतिहास में उपलब्ध 'सुग्रीव विजय' ही प्रथम यक्ष-गान है। इसमें संगीत की महत्ता अधिक है। इनके नाटक निरक्षर जनता में आनन्द और उत्साह का संचार कराने में अत्यन्त समर्थ हैं। 'सुग्रीव विजय' ऐसे नाटकों में शीर्ष-स्थान रखता है।

रामराज भूषण कवि—(१५५०-१५६० ई०) ये भाट-वंश में पैदा हुए थे और भट्टु, मूर्ति तथा भट्टुमूर्ति आदि नामों से भी प्रसिद्ध थे। 'रामराज भूषण' तो उनका उपनाम है। ये श्रीकृष्ण देव रायलु के जामाता अलियराम-राजु के आस्थान में रहते थे और वेंकट रायभूषण के पुत्र तथा तिम्मराजु के पौत्र थे। इनके मन में भगवान् श्री रामचन्द्र और हनुमान के प्रति बड़ी

आस्था थी। इनकी कृतियों में १. 'वसुचरित्रम्', २. 'नरस भूपालीयम्', और ३. 'हरिश्चन्द्र नलोपाख्यानम्' आदि उपलब्ध हैं।

'नरस भूपालीयमु' तेलुगु-साहित्य का महत्त्वपूर्ण रीति-ग्रन्थ है। इसे अलिय रामराजु के भागिनेय नरसराजु को समर्पित किया गया है। यह ठीक विद्यानाथ कवि के 'प्रतापरुद्र यशो भूषण' का अनुवाद-जैसा है। अन्तर केवल इतना ही है कि 'नरस भूपालीयमु' में कवि ने नाटक-प्रकरण छोड़ दिया है और लक्ष्य में दिये गए पद्य नरसराजु से सम्बन्धित हैं। 'हरिश्चन्द्र नलोपाख्यान' तेलुगु-साहित्य का दूसरा द्व्यर्थि-काव्य है। इसमें राजा हरिश्चन्द्र तथा राजा नल की कथाएँ एक साथ चलती हैं। इससे कवि के प्रकाण्ड पांडित्य का पता चलता है। परन्तु यहाँ यह लिख देना भी अत्यन्त आवश्यक है कि ऐसे द्व्यर्थि-काव्यों में पांडित्य की प्रगल्भता भले हीं प्रत्यक्ष हो, परन्तु इससे कविता की आनंद-विधायिनी शक्ति का लोप हो जाता है। इससे पाठकों को आनंद की अपेक्षा आश्चर्य का अनुभव ज्यादा होने लगता है।

'वसु चरित्रमु' कवि का सर्वोत्तम काव्य है। इसमें प्रबन्ध-कला का चरम विकास हुआ है। काव्य के कला पक्ष और भाव पक्ष दोनों इसमें आँख-मिचौनी का खेल खेल रहे हैं। इसमें कोमल-कान्त-पदावली का कवि ने अपूर्व प्रयोग किया है। इसके प्रत्येक शब्द में संगीत की जो मधुर ध्वनि सुनाई देती है उसका प्रमुख कारण कवि की संगीत-प्रवणता है। 'वसु चरित्रमु' की कथा महाभारत के उपरिचर वसु की कथा पर निर्भर है। यह कथावस्तु लेकर कवि ने काव्योचित परिवर्तनों के साथ कथा का सम्यक् वर्णन किया है। इसमें अनेकानेक कथाओं की आयोजना नहीं है, जब कि 'मनु चरित्रमु' की कथा आनुषंगिक कथाओं से आबद्ध है। इससे मूल कथावस्तु में चुस्ती आ गई है। इसमें एकमात्र अंतर्कथा शुक्तिमती और कोलाहल की है, जो मूल कथा के साथ सम्बद्ध है। इसमें कवि की कल्पनागत प्रतिभा दिखाने के लिए कई पद्य हैं, जो सरस्वती देवी के कण्ठ-हार में रत्न-जैसे जगमगाने वाले हैं।

अन्य कवियों की तुलना में रामराज भूषण की यह विशिष्टता अवश्य

दिखाई देती है कि वे एक साथ उच्च कोटि के कवि, पण्डित और आचार्य थे। इस प्रकार तीन विशिष्ट गुणों का समावेश इस युग के और किसी कवि में नहीं दिखाई देता। धन्य है रामराज भूषण की वाणी, जिसकी त्रिमुखी प्रतिभा त्रिवेणी की भाँति साहित्य के क्षेत्र को अद्यावधि पुनीत कर रही है।

'वसु चरित्रमु' के आधार एवं अनुकरण पर कई परवर्ती कवियों ने अपने काव्य लिखे। इसका अनुवाद संस्कृत और तमिल में भी हुआ है।

कुमार धूर्जटि—इनका वास्तविक नाम वेंकटार्य्य था। ये धूर्जटि कवि के पौत्र तथा कालियामात्य के पुत्र थे। इन्होंने 'कृष्णराय विजयमु' नामक ऐतिहासिक काव्य की रचना करके उसे श्री रामचन्द्र जी के चरणों में समर्पित किया था। इनके दूसरे ग्रन्थ 'सावित्री चरित्रमु' और 'इन्दुमती विवाहमु' हैं। इनकी पहली कृति अत्यन्त प्रसिद्ध है। इस काव्य की महत्ता द्विमुखी है। एक साथ साहित्यिक प्रतिभा तथा ऐतिहासिक तथ्य लेकर इनके काव्य की रचना हुई है। पूर्ववर्ती कवियों की कृतियों में 'पलनाटि वीर चरित्र' और 'सिद्धेश्वर चरित' कुछ अंश तक ऐतिहासिक महत्ता रखती हैं, परन्तु व्यापक प्रभाव डालने की क्षमता 'कृष्णराय विजयमु' में अधिक है। इसका प्रमुख कारण यह है कि इस काव्य के नायक के यश से देश की चारों दिशाएँ अद्यावधि सुरभित हैं। इनका रचना-काल सन् १५५० ई० से १५८० ई० तक समझा जा सकता है। कुमार धूर्जटि की कविता-शैली मनोरंजक, भाषा प्रांजल, तथा विचार-धारा अत्यन्त परिपुष्ट मालूम पड़ती है।

कुम्मर मोल्ल—यह मोल्ल केसन सेट्टि की पुत्री थीं। जनश्रुति के आधार पर मोल्ल कुम्हार जाति की स्त्री मानी जाती हैं। इनका निवास-स्थान नेल्लूर जिले का 'गोपवरम्' नामक स्थान था। इनकी कृति 'रामायण' बालक-बालिकाओं में बहुत प्रचलित है। इनकी कविता की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि वह प्रसाद गुण से ओत-प्रोत है। तेलुगु-साहित्य के इतिहास की इनी-गिनी कवयित्रियों में मोल्ल का स्थान यदि सर्व-प्रथम

नहीं तो सर्वोन्नत अवश्य है। ताल्लपाक अन्नमाचार्य की पत्नी तिरुमलक्का तेलुगु की पहली कवयित्री थीं। मध्य-युग के उन दिनों में एक कमनीय वस्तु पर अपनी भावुक लेखनी चलाकर निस्सन्देह मोल्लाम्बा ने अपने सरस हृदय का विशद परिचय दिया है। इसमें स्त्रियोचित संयम का प्रशंसनीय प्रदर्शन हुआ है।

मल्ला रेड्डि—इनका जन्म रेड्डि-वंश में हुआ था। इनके पिता रामराजु बिक्कवोलु के अधिपति थे। मल्ला रेड्डि का जीवन-काल सन् १५५० ई० से १६१० तक माना जाता है। यह इब्राहीम शाह के समसामयिक थे। इनकी कृति 'षट्चक्रवर्ति चरित्रमु' में मान्धाता आदि पुराण-प्रसिद्ध राजाओं का अभिवर्णन किया गया है। इनमें सर्वत्र कवि-हृदय की सुकुमारता का प्राचुर्य झलकता है।

शंकर कवि—शंकर कौण्डिन्य गोत्र के देचामात्य के पुत्र और गोदावरी जिले के निवासी थे। शंकर कवि ने गौरन्न के 'द्विपद-काव्य' की देखा-देखी अपनी कृति 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' का प्रणयन किया। यह मुहम्मद कुतुब-शाह के समय में वर्तमान थे। अतः 'हरिश्चन्द्रोपाख्यान' की रचना सोलहवीं सदी के अन्त अथवा सत्रहवीं सदी के आरम्भ में हुई थी। इनकी रचना-शैली मनोज्ञ एवं रसपूर्ण है। कहीं-कहीं भावों की उत्कृष्टता के साथ-साथ इनकी भाषा भी प्रौढ़ और जटिल हो गई है।

चरिगोंड धर्मन्न—श्री धर्मन्न नियोगि ब्राह्मण तिम्मयामात्य के पुत्र थे। ये तेनालि रामकृष्ण कवि के समसामयिक थे। इन्होंने 'चित्रभारतमु' नामक आठ आश्वासों का एक काव्य लिखा है। कृतिपति मादयामात्य के पुत्र पेद्दनामात्य थे। इनकी रचना अलंकार-प्रधान है। कला-प्रदर्शन की अधिकता के कारण इनके काव्य की आत्मा पर प्रबल आघात पड़ा है। कवि धर्मन्न शतावधानी भी थे। इनसे पहले रामराज भूषण ने भी अपनी अवधान-कविता के बारे में अहंपूर्ण वाणी सुनाई। इसका चरम विकास हम बीसवीं शती के प्रथम चरण में देखते हैं।

तुरगा रामकवि—नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में आपका जन्म हुआ था।

ये अडिदमु सूरकवि के समकालीन थे। इन्होंने 'नागर खण्ड' लिखकर मुहम्मद कुतुबशाह के सामन्त 'मार्कण्डेय' को समर्पित किया है। इस कृति में अय्यंकि बालसरस्वती का सहयोग भी प्राप्त था। रचना त्रुटिपूर्ण होने पर भी उसका आस्वाद अत्यन्त मधुर है। रामकवि के व्यक्तित्व के चारों ओर अनेक दन्त-कथाएँ उपजीं। न जाने इनमें सचाई का अंश कहाँ तक है? ये परम सत्यवादी थे।

सारंगु तम्मय्य—तम्मय्य नरसिंह मन्त्री के पुत्र और तम्मय्य के पौत्र थे। इन्होंने 'वैजयन्ती विलासमु' नामक काव्य की रचना चार आश्वासों में की है। बारह आलवारों में तोंडरडिप्पोडि आलवार एक थे। इन्हींकी जीवनी का काव्यात्मक वर्णन कवि ने इस काव्य में किया है। तोंडरडिप्पोडि आलवार का दूसरा नाम विप्रनारायण था। अतः 'वैजयन्ती विलासमु' 'विप्र नारायण चरित्रमु' के नाम से भी विख्यात है।

विप्रनारायण एक वैष्णव ब्रह्मचारी थे। वे कावेरी नदी के किनारे पर बसे हुए श्रीरंग-क्षेत्र में रहा करते थे। उनका जीवन-निर्वाह भिक्षाटन के द्वारा होता था। वे प्रतिदिन श्रीरंगनायक को तुलसी-दल-मालाओं का समर्पण करके परम हर्ष का अनुभव करते थे तथा सदैव मन्दिर में ही रहते और जप-ध्यान आदि किया करते थे।

सारंगु तम्मय्य के समय तक प्रबन्ध-कविता के ह्रास-लक्षण दिखाई देने लगे थे। हमने पहले चरिगोंड धर्मन्न की कविता में कला-चातुर्य तथा अवधान-कविता के व्यामोह का वर्णन किया है। जैसे पिल्ललमर्रि पिनवीरन्न का काव्य 'शृङ्गार शाकुन्तलमु' काव्य-काल के उज्ज्वल विकास का अग्रदूत है, वैसे ही सारंगु तम्मय्य की कृति निस्सन्देह आगामी ह्रास-काल की सन्देश-वाहिका है।

तेनालि अन्नय्य—अन्नय्य शैवाचार-सम्पन्न राम पण्डित के पुत्र और तेनालि के निवासी थे। अपनी कृति 'सुदक्षिणा परिणय' का समर्पण इन्होंने सोमयामात्य के कर-कमलों में किया था। इनका रचना-काल सन् १५८० ई० के आस-पास था। ललित कविता लिखने में अन्नय्य अत्यन्त समर्थ

थे। अतएव कृतिपति के द्वारा ये इस प्रकार प्रशंसित हुए—"तुम पूर्ववर्ती कवियों की भाँति सलक्षण कविता लिख सकते हो, मानो सरस्वती कर्पूर-कण छिटका रही हो, चन्द्रमा शीतल चाँदनी छिटका रहा हो, मन्मथ कुसुम-बाणों की बौछार कर रहा हो।"

एलकूचि बालसरस्वती—ये वैदिक ब्राह्मण और महामहोपाध्याय की उपाधि से विभूषित थे। १. 'चन्द्रिका परिणयमु' (काव्य), २. 'राघवयादव-पांडवीयमु', ३. 'आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणि की व्याख्या' ४. 'रंग कौमुदी' (नाटक) और ५. 'भाषा विवरण' इनकी प्रमुख कृतियाँ हैं। इनमें दूसरी कृति कवि की बौद्धिक प्रतिभा की परिचायक है। यह त्र्यर्थि-काव्य है। इसमें एक-एक पद्य के तीन-तीन अर्थ निकलते हैं, जो 'रामायण', 'भागवत' और 'भारत'-कथाओं से सम्बद्ध हैं। इनकी 'शब्द-चिन्तामणि' की व्याख्या भी अत्यन्त प्रसिद्ध है।

काकुनूरि अप्पकवि—इनका जन्म भी वैदिक-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इन्होंने 'आन्ध्र-शब्द-चिन्तामणि' का अनुवाद 'अप्पकवीयमु' नाम से तेलुगु के पद्यों में किया है। आजकल तेलुगु-भाषा और साहित्य के विद्यार्थियों के लिए यह अनिवार्य पाठ्य-ग्रन्थ है। अप्पकवि की कीर्ति लक्षण-कर्ता के नाते अक्षुण्ण है।

चेमकूर वेंकट कवि—जन्म से आपको शूद्र माना जाता है। ये 'विजय विलासमु' तथा 'सारंगधर चरित्रमु' आदि काव्यों के प्रणेता थे। ये काव्य तंजौर के प्रसिद्ध राजा रघुनाथ रायलु को समर्पित किये गए थे। उन दिनों नायक राजाओं के प्रोत्साहन से तेलुगु-सरस्वती के पद-नूपुरों की झन-झनाहट सुदूर दक्षिण में भी मुखरित होने लगी थी। 'विजय विलासमु' में अर्जुन और सुभद्रा की विवाह-कथा वर्णित है। इसमें लोकोक्तियों और कहावतों का ऐसा मार्मिक प्रयोग कवि ने किया है कि जिससे तेलुगु-जनता के पारिवारिक तथा सामाजिक जीवन का मर्म खुल जाता है। संवाद-शैली और अनुप्रासों का अनुकरण देखने ही योग्य है। 'सारंगधर चरित्रमु' में नायक सारंगधर राज-राज नरेन्द्र के पुत्र माने जाते हैं (यद्यपि इतिहास के अनुसार यह ग़लत है),

सारंगधर पर इनकी सौतेली माँ चित्रांगी आसक्त थीं, परन्तु इस अनुचित प्रेम का स्वागत सारंगधर ने नहीं किया। चित्रांगी के प्रतिकार के कारण सारंगधर के हाथ-पैर राजा की आज्ञा से काट डाले गए। सारंगधर की कथा तथा अशोक के पुत्र कुणाल की कथा में पर्याप्त समता दिखती है।

वेंकट कवि की काव्य-शैली मंजुल तथा रोचक है। 'विजय विलासमु' प्रबन्ध-काव्यों की आखिरी विजय-पताका है। इसके एक पद्य का भाव इस प्रकार है—"धरती पर वसन्त ने सूखे पेड़ों में हरियाली ला दी तो सारे पेड़-पौधे पुष्पों से सुशोभित हुए और चारों ओर सुगन्ध महकने लगी। परन्तु आकाश पर विराजमान चन्द्रमा ने वसन्त की इस कृति से सन्तुष्ट न होकर अपनी चाँदनी की धारा से चन्द्रकान्त-शिलाओं को पिघला दिया। (एक सूखे पेड़ों में लहलहाहट लाया तो दूसरे ने पत्थरों तक को पिघला दिया। ऐसी थी स्पर्धा।) इससे यह प्रमाणित होता है कि समकालीन पुरुष आपस की महत्ता स्वीकार नहीं कर सकते।"

द्वितीय उत्थान का समालोकन

यह उत्थान तेलुगु-साहित्य का स्वर्ण-युग है। इसमें काव्य-कला का चरम विकास हुआ। इस उत्थान के अधिकांश कवियों ने अनुवाद करना छोड़कर मौलिक काव्य-रचना करनी आरम्भ कर दी थी। इनके काव्यों की कथावस्तु दो प्रकार की थी—१. ख्यात वृत्त और २. कल्पित वृत्त। 'मनु-चरित' ख्यात वृत्त वाला प्रबन्ध है जब कि 'कला पूर्णोदयमु' में कल्पित वृत्त है। इन प्रबन्धों में प्रधानतः शृङ्गार रस का पोषण है। पुराणों में उप-देशात्मकता अधिक है, जब कि प्रबन्धों में विलास-सामग्री की बहुलता है। पौराणिक साहित्य में कल्पना तथा वर्णनों की कमी होने के कारण, उसमें उपमा, रूपक, स्वभावोक्ति आदि इने-गिने अलंकार ही प्रयुक्त हैं, जब कि प्रबन्ध-साहित्य में उत्प्रेक्षा, अतिशयोक्ति तथा अत्युक्ति आदि अलंकारों का समावेश खूब है, जिससे कवियों की कल्पना-प्रतिभा का पता लगता है। प्रबन्ध-साहित्य की विशेषता मुख्यतः अष्टादश वर्णनों में पाई जाती है।

नगर, पर्वत तथा सूर्योदय आदि के वर्णनों में कवियों की मौलिक प्रतिभा तथा पैनी सूझ का पता चलता है। 'कला कला के लिए' का निनाद इसके प्रबन्ध-काव्यों में चरितार्थ हुआ है और इनमें आनन्द-विधायिनी शक्ति सर्वत्र वर्तमान है।

कवियों की बुद्धि काव्य-कल्पनाओं पर ही न टिककर पांडित्य-प्रदर्शन की ओर भी दौड़ पड़ी। उनके मस्तिष्क की पटुता हम 'राघव पांडवीयमु' आदि द्वयर्थि-काव्यों में तथा 'राघव यादव पांडवीयमु' आदि त्र्यर्थि-काव्यों में देख सकते हैं। शतक-साहित्य में सबसे उत्तम शतक धूर्जटि कवि का 'कालहस्तीश्वर शतक' है। इसमें काव्य के व्यंग्य-वैभव के साथ-साथ कवि के हृदय का भक्तिपूर्ण गद्‌गद् स्वर भी सुनाई देता है। 'वसु चरित्रमु' में प्रबन्ध-कला का चरम विकास दृष्टिगत होता है। इसमें प्रबन्ध-लक्षणों का उचित प्रयोग दिखाई देता है और इसकी एक विशेषता यह है कि शुक्ति-मती तथा कोलाहल के वृत्तान्त के द्वारा कवि ने प्रकृति के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने वाली अपनी मनोवृत्ति का सुखद परिचय दिया है।

'कृष्णराय विजयमु' तथा 'नरपतिविजयमु' आदि काव्यों के द्वारा कवियों की ऐतिहासिक भावना (Historic sense) का पता चलता है। उत्थान के उत्तर काल में 'वैजयन्ती विलासमु' आदि काव्यों के द्वारा आगामी ह्रास-काल का आभास मिल जाता है। इस काल में शब्दालंकारों की ओर कवियों की मनोवृत्ति झुकती गई। 'चित्र भारतमु' इस प्रवृत्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। इस उत्थान के आरम्भ में तो सब-कुछ अच्छा-ही-अच्छा था। काव्य-कला का सम्पूर्ण सौष्ठव तो दर्शनीय था ही, साथ ही इस उत्थान के अन्त तक काव्य अथवा प्रबन्ध-कामिनी के तन-मन दोनों में भद्दापन और लद्धड़पन जमता गया।

इस उत्थान की दो घटनाएँ अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। मुसलमान नवाबों को तेलुगु-काव्य समर्पित हुए थे। इनमें मल्किभराम (मलिक इब्राहीम) मुख्य हैं। दूसरी घटना यह है कि पोन्निकंटि तेलगन्न ने 'ययाति चरित्र' लिखकर ठेठ तेलुगु के काव्यों का सूत्रपात किया था। इस समय की प्रमुख

धार्मिक भावना वैष्णवतापरक थी, परन्तु शैव-धर्म का भी यथोचित सत्कार होता था। उदाहरण के लिए धूर्जटि की रचनाएँ ली जा सकती हैं। वास्तव में इस काल के श्रीकृष्ण देवरायलु तथा पेद्दन्न आदि प्रधान कवि वैष्णव धर्मावलम्बी थे। ताल्लपाक चिन्नन्न की विशेषता इसमें है कि वे राजाश्रय के बिना ही द्विपदा छन्द में 'स्वान्तःसुखाय' काव्य लिखते रहे।

सारांशतः इस उत्थान का साहित्यिक गति-विधान बहुमुखी तथा परमोज्ज्वल था। हाँ, इसकी स्फीत उज्ज्वलता पर उत्तर काल में क्रमशः अवश्य मलिन रेखाएँ खिंचती गईं। तेलुगु-वाणी के क्रीड़ा-स्थल प्रधानतः विद्यानगर, गोलकोंड, नंद्याल, पेनुगोंड तथा चन्द्रगिरि आदि थे।

: ४ :

ह्रास-काल

(१६५०—१६००)

आन्ध्र-प्रदेश छिन्न-भिन्न होकर छोटे-छोटे राज्यों के टुकड़ों में बँटा पड़ा था, अतः किसी समीकृत राज्य-सत्ता के आश्रय में रहकर विकसित होने की सुविधा काव्य-कला के भाग्य में नहीं बदी थी। साहित्य समाज का प्रतिबिम्ब है। आन्ध्रों का राष्ट्रीय जीवन इस काल में पतन की ओर अग्रसर था; अतः साहित्य में भी कुरुचि उत्पन्न हो गई। अंग्रेजों के भारत में आगमन के कारण सारा देश त्रस्त होता जा रहा था। उसके विषैले प्रभाव से राष्ट्रीय जीवन मृत नहीं, तो मूर्च्छित अवश्य हो गया था। फलतः इस युग के अन्त तक अंग्रेजी हुकूमत भारत में कायम हो गई। जातीय जीवन में नई चेतना भरने का समय अभी बहुत दूर था।

विजयनगर की विच्छिन्न राज्य-सत्ता सुदूर दक्षिण के तंजौर, मदुरा, चन्द्रगिरि और पेनुगोंड आदि स्थलों में बिखर गई थी। फलत: तेलुगु-साहित्य का विकास (अथवा ह्रास ?) इन्हीं राजाओं के द्वारा इस युग में हुआ। दक्षिण भारत की सुदूर सीमा में बसे हुए इन राज्यों के अतिरिक्त तेलुगु-साहित्य का पोषण करने वाले इने-गिने दूसरे संस्थान भी थे। ऐसे संस्थानों में पेद्दापुरम्, विजयनगरम्, (विशाख जिले का) पीठिकापुरम्, गद्वाला कार्वेटिनगर तथा कालहस्ति आदि उल्लेखनीय हैं।

प्रमुख कवि

कामेश्वर कवि—इनका आस्पद 'लिंगन मखि' था। इनकी माता का नाम कामाक्षम्मा तथा पिता का नागनामात्य था। सन् १६७५ के आस-पास इन्होंने 'सत्यभामा सान्त्वनमु' नामक काव्य की रचना की। इस कृति के अभिनेता मदुरा के राजा मुद्दलगिरि थे। कवि ने अपने काव्य में विश्रृङ्खल अथवा उत्तान श्रृङ्गार से काम लिया है।

समुखं वेंकट कृष्णाप्प नायकुडु—ये जाति के शूद्र थे और मदुरा के अधिनायक विजयरंग चोक्कनाथ के दरबार में रहते थे। चोक्कनाथ का राजत्व-काल सन् १७०४ से १७३१ तक था। इन्होंने 'अहल्या संक्रंद्रनमु' नामक प्रबन्ध की रचना की थी। इसमें महर्षि गौतम की पत्नी अहल्या पर इन्द्र का आसक्त होना, अपने मनोभीष्ट की सिद्धि के लिए इन्द्र की गौतम-वेश-रचना आदि घटनाएँ श्रृङ्गार के अतिरेक में वर्णित हैं। प्रधानतः इस युग के काव्यों में संयोग श्रृङ्गार की अतिशयता पाई जाती है। काम-सूत्रों के अनुसार रति-क्रिया आदि का वर्णन भी इसमें यत्र-तत्र प्राप्त है। कृष्णाप्प नायकुडु अपनी काव्य-रचना की अपेक्षा अपने गद्य-निर्माण के लिए बड़े प्रसिद्ध हैं। इन्होंने केवल गद्य में 'जैमिनी भारतमु' लिखा। यह तो सच है कि पुराणों में और काव्यों में भी गद्य की सहायता ली गई थी, परन्तु गद्य को सम्मानपूर्ण साहित्यिक गौरव इसी युग में प्राप्त हुआ। ऐसे गद्य के रचयिताओं में नायकुडु का स्थान बहुत ऊँचा है।

शेषमु वेंकटपति—इनका जन्म नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। वेंकटपति कृष्णाप्प नायकुडु के समसामयिक थे; अतः इनका रचना-काल भी सन् १७०४ से १७३१ ई० तक माना जा सकता है। इन्होंने 'शशांक विजयमु' नामक काव्य लिखकर सीनार्य के करकमलों में अर्पित किया था। सीनार्य तो विजयरंग चोक्कनाथ की कृपा से सतत वृद्धिशील संपदा के अधिकारी थे।

इस कवि ने पुराणों के अन्तर्गत पाई जाने वाली तारा और चन्द्र की मोहक कथा को लेकर एक काव्य लिखा था। अनैतिक श्रृङ्गारी काव्यों में

इसका सर्वप्रथम स्थान है। इसमें लोक-संग्रह-वृत्ति की नितान्त अवहेलना की गई है। हाँ, काव्य की शैली इसकी बहुत रोचक है।

कूचिमंचि तिम्म कवि—तिम्मकवि का जन्म भी नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। ये गंगनामात्य और लचमांबा के पुत्र थे। इनका जन्म सन् १६६० ई० के आस-पास हुआ माना जाता है। इन्होंने कई कृतियाँ लिखी हैं। वास्तव में, इस युग में इतने काव्यों का सफल रचयिता दूसरा कोई नहीं दिखाई देता। अतः प्राचीन काव्य-साहित्य की सुषमा अंतिम बार इनके काव्यों में देखने को मिलती है।

तिम्मकवि का साहित्यिक जीवन बड़ा ही वैभवपूर्ण था। पीठिकापुर के अधिपति माधवनृपति इनके आश्रयदाता राजा थे। उन्होंने इन्हें 'कवि सार्व-भौम' की उपाधि से विभूषित किया था। इनकी कृतियों में १. 'अच्च तेलुगु रामायणमु', २. 'नीला सुन्दरी परिणयमु', ३. 'रसिकजन मनोभिराममु', ४. 'राजशेखर विलासमु' और ५. 'लक्षण-सार संग्रहमु' आदि अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। कृतियों में रचना-काल भी दिया गया है। इन तिथियों के अनुसार सन् १७१० से १७५६ ई० तक कवि निरन्तर काव्य-रचना में लगे रहे। इनकी रचनाओं के सम्यक् अनुशीलन से यह बात स्पष्ट झलकती है कि इनकी गति साहित्य के विविध अंगों में अत्यन्त बढ़ी-चढ़ी थी। 'रसिकजन मनोभिराममु' इनका अच्छा प्रबन्ध-काव्य है, 'अच्चतेलुगुरामायणमु' और 'नीलासुन्दरी परिणयमु' ठेठ तेलुगु के उत्तम काव्य हैं। 'शिवलीलाविलासमु' आदि इनकी भक्ति-प्रवणता के द्योतक हैं। 'नीलासुन्दरी परिणयमु' इनका एक छोटा, परन्तु गुणों में बड़ा काव्य है। इसमें निर्मल भाव और मधुर शब्द-गुम्फन पाया जाता है।

श्रीकृष्ण-परक साहित्य में साधारणतया जहाँ एक ओर अतिमानवीयता (Supernatural element) का गहरा रंग दिखाई देता है, वहाँ दूसरी ओर इसी अतिमानवीय नायक का निकट संसर्ग हरी-भरी प्रकृति के साथ तथा भोले-भाले जन्तुओं और पक्षियों के साथ भी दिखाया जाता है, जिससे Pastoral Poetry का स्वाद भी भारतीय साहित्य में मिल

जाता है। प्रायः हमारे पूर्वजों ने इस प्रकार अतिमानवीय वैभव के साथ प्राकृतिक मधुरिमा का समन्वय दिखाया है। 'नीलासुन्दरी परिणयमु' में इसी प्रकार का समन्वय प्राप्त है। 'लक्षणसार संग्रहमु' में इन्होंने 'अप्पकवीयमु' में प्रकट किये गए कुछ विचारों का सुधार किया तथा कई नये कवियों के पद्य लक्ष्यों के रूप में दिए। अतः तिम्मकवि एक उच्च कोटि के आचार्य भी सिद्ध होते हैं।

कूचिमंचि जग्गकवि—ये तिम्मकवि के भाई थे। इनका जन्म-काल सन् १७०० ई० के आस-पास था। अपने भाई की भाँति जग्गकवि भी प्रभावशाली कवि थे। इन्होंने 'चन्द्ररेखा विलापमु', 'सुभद्रा परिणयमु' तथा 'सोमदेव राजीयमु' आदि काव्य लिखे हैं। पहली कृति के बारे में एक कथा प्रचलित है, जो विश्वसनीय मालूम पड़ती है। पहले ये विजयनगरम् के अधिपति विजयरामराजु के बहनोई नीलाद्रिराजु के आश्रय में गए। उनकी प्रेरणा से इन्होंने वेश्या चन्द्ररेखा पर 'चन्द्ररेखा विलासमु' नामक एक शृङ्गार-रस-प्रधान काव्य लिखा। राजा ने किसी वेंकट शास्त्री की बातों में आकर काव्य को स्वीकार नहीं किया। इस पर कवि का न्यायपूर्ण क्रोध भड़क उठा। इसी दिन कवि ने काव्य को नष्ट कर दिया और 'चन्द्ररेखा विलापमु' नामक दूसरा काव्य लिखा, जिसमें नीलाद्रिराजु की निन्दा जी खोलकर की गई है। इस प्रकार आश्रयदाता की निन्दा-ही-निन्दा करते हुए लिखे गए काव्यों में यह काव्य सर्वप्रथम है। इसीमें कवि की निन्दा अथवा स्तुति भी है।

एनुगु लक्ष्मण कवि—लक्ष्मण कवि नियोगि ब्राह्मण और तिम्मकवि के पुत्र थे। इनकी माता का नाम पेरमांबा था। इनका जन्म एक वैभवपूर्ण कवि-वंश में हुआ था। इनके पितामह, पिता और बड़े भाई सभी कवि थे। ये तिम्मकवि के समसामयिक थे। इनका रचना-काल सन् १७४० ई० से सन् १७८० तक माना जा सकता है।

इन्होंने 'रामेश्वरमाहात्म्यमु', 'गंगामाहात्म्यमु', 'गीर्वाणसूर्य शतकमु' तथा 'सुभाषित रत्नावली' आदि रचनाएँ की हैं। इन ग्रन्थों में विविधता

तो अवश्य है, परन्तु मौलिक प्रतिभा बहुत कम है। 'सुभाषित रत्नावली' भर्तृहरि की संस्कृत-रचना का सरस एवं सफल अनुवाद है।

नेल्लूरि राघव कवि—नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में इनका जन्म हुआ था। ये वेंकटपति के पुत्र थे। इनका समय सन् १७१५ के आस-पास है। इन्होंने 'यादवराघवपांडवीयमु' नामक एक त्र्यर्थि-काव्य की रचना की थी। इस प्रकार के काव्यों में काव्य की आकर्षक सरसता की अपेक्षा बुद्धि का दुःखद क्लेश ही अधिक पाया जाता है। एक छन्द के अनुसार कवि राघव शतावधान करने में, आशु-प्रबन्धों के निर्माण में, समस्या-पूर्ति में और विषम समस्याओं के संविधान में अत्यन्त दक्ष थे। इससे स्पष्ट है कि इनमें आनन्द-विधायिनी कविता का नितान्त अभाव था।

अडिदमु सूरकवि—ये भी नियोगि ब्राह्मण और अडिदमु बाल भास्कर के पुत्र थे। इनका रचना-काल सन् १७५० से १७८० तक माना जाता है। ये अपने समय के बड़े प्रसिद्ध कवि थे। इन्होंने 'चन्द्रमती परिणयमु', 'रामलिंगेश्वर शतकमु' तथा 'आंध्रचन्द्रालोकमु' आदि ग्रन्थ लिखे थे। इनके अतिरिक्त इनकी अनेक फुटकर कविताएँ भी लोगों में अत्यन्त प्रचलित हैं। इनकी रुचि पर्यटन की ओर अधिक थी। 'चन्द्रमती परिणयमु' की रचना 'वसु चरित्रमु' के अनुकरण पर की गई है। 'रामलिंगेश्वर शतक' में व्यंग्य के कण बहुत छिड़के गए हैं, जिनमें तत्कालीन समाज का अच्छा परिचय मिलता है। 'आन्ध्रचंद्रालोकमु' संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थ का अनुवाद है। 'कविसंशयविच्छेदमु' पिंगल-सम्बन्धी रचना है। इन रचनाओं के अनुशीलन से जान पड़ता है कि कवि की काव्य के विविध अंगों के वर्णन में अच्छी गति थी।

मंगलगिरि आनन्द कवि—ये जन्म से नियोगि ब्राह्मण, परन्तु धर्म से ईसाई थे। इन्होंने 'वेदांतरसायनमु' नामक एक काव्य चार आश्वासों में लिखा है। इस काव्य में ईसा मसीह की कथा ही अभिवर्णित है। इसकी रचना सन् १७५० के अनन्तर ही हुई थी। इन्होंने एक नये मजहब पर कलम चलाई, इनकी महत्ता और कृति की विशेषता इसीमें है। इससे यह

साफ़ लक्षित होता है कि तब तक ईसाइयों का प्रभाव देशवासियों पर खूब जमा हुआ था। काव्य की सरसता इनकी कृतियों में प्रचुर मात्रा में विद्यमान है।

कनुपर्ति अब्बयामात्य—(१७५०—१७८० ई०) इनका जन्म भी नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनके पिता का नाम काममन्त्री और माता का नरसांबा था। इन्होंने 'अनिरुद्ध चरित्र' और 'कविराज मनोरंजन' नामक दो काव्य लिखे हैं। इनके अभीष्ट देव मंगलगिरि क्षेत्र के श्री नृसिंह स्वामी थे। अपने समसामयिक कवियों में इनका सम्मानपूर्ण स्थान था। अपनी काव्य-कुशलता का सारा श्रेय ये नृसिंह स्वामी को ही देते थे। इनके 'कविराज मनोरंजन' का दूसरा नाम 'पुरूरववंश्चरित्र' है। काव्य के गुणों में यह पूर्ववर्ती प्रबन्ध 'वसु चरित्रमु' का अनुकरण करता है।

मरिंगंटि कवि—'मरिंगंटि'-परिवार में कई कवि हुए हैं। ये वैष्णव थे। इनका निवास-स्थान देवरकोंडा सीमा था। इनमें सिंगराचार्य ने "दशरथ राजनंदन चरित्र' काव्य लिखा है। इनके काव्य में ओष्ठ्य वर्णों का निषेध हुआ है और कविता सर्वथा निर्दोष है।

वेंकट नरसिंहाचार्य ने 'श्रीकृष्ण शतानंदीयमु' तथा 'चिलुव पंडिगि रेनिपेरणमु' नामक दो काव्य लिखे हैं। दूसरी कृति ठेठ तेलुगु की है। इसमें सुयोधन की विवाह-कथा वर्णित है। इनकी पहली कृति का स्रोत 'महाभागवत' है। 'भागवत' में यह लिखा गया कि श्रीकृष्ण जब एक बार जंगल में गायों एवं ग्वाल-बालों के साथ गए तब ब्रह्मा को यह शरारत सूझी कि हम सारी गायों को और ग्वाल-बालों को छिपा रखें। बाद में जब श्रीकृष्ण स्वयं इतने रूपों में प्रकट होते हैं तो ब्रह्मा की अक़्ल ठिकाने लगी और उन्होंने श्रीकृष्ण से क्षमा की याचना की। कवि ने यह कथावस्तु लेकर कुछ परिवर्तन किया। ब्रह्मा की करतूत जान लेने पर श्रीकृष्ण स्वयं ब्रह्मा के वेश में सरस्वती के निकट जाकर पासा खेलने बैठते हैं। इतने में असली ब्रह्मा वहाँ आकर देखते हैं तो हक्के-बक्के रह जाते हैं। व्यंग्य के छींटे दोनों ओर से छिटकते हैं। ऐसी कल्पना के लिए मरिंगंटि कवि पिंगलि सूरन्न का आभारी है। श्रीकृष्ण ने ईंट

का जवाब पत्थर से दे दिया ।

कंकंटि पापराजु—नियोगि ब्राह्मण थे। इनके समसामयिक पुष्पगिरि तिम्मन्न थे। इनका समय सन् १७६०ई० के आस-पास था। इन्होंने 'उत्तर रामायण' नामक काव्य और 'विष्णुमायाविलास' नामक यक्ष-गान की रचना की। 'उत्तर रामायण' में रावण आदि राक्षसों के जन्म-वृत्तान्त तथा श्री रामचन्द्र जी के तिलक के अनन्तर की कथा बड़ी सफलता के साथ वर्णित है।

'रामायण' में पापराजु का पाण्डित्य भी बढ़ा-चढ़ा था। कवि में जहाँ एक ओर पाण्डित्य-प्रदर्शन की अदम्य लालसा घर कर बैठी थी, वहीं दूसरी ओर रसवद् प्रसंगों की पैनी पहचान भी थी। अतएव इस कृति का प्रचार राजा के महल से लेकर रंक की झोंपड़ी तक है। मदनगोपाल स्वामी के श्री चरणों में कवि ने इस काव्य का समर्पण किया था। कृति-समर्पण का एक पद्य लीजिए, जिसमें कवि ने अपने काव्यगत गुणों के साथ श्रीकृष्ण की आठ रानियों में से पाँच रानियों के नाम भी ध्वनित कर दिए :

"वैदर्भी विलसद्विलासमुन जेल्वंबूनि, सत्योक्ति नें
ते दीपिंचि कलिंदजोज्ज्वल रसाश्लिन् मिंचि, भद्रात्मकं
बै, दीव्यदूघ लक्षणाश्रय समाख्यं गांचु मत्काव्यमा
ह्लादं बिच्चु ग्रहिंप कृष्णुनकु नहेंबे कदा येय्येडन्"

अर्थात् वैदर्भी की रीति से समन्वित और सत्य वाणी से भूषित होकर कालिंदी के जल-जैसे उज्ज्वल रस से दीप्त होकर, भद्रता से भरकर, लक्षणा नामक शब्द-व्यापार अथवा काव्य के अन्य लक्षणों से समलंकृत हो गया। यह मेरा काव्य श्रीकृष्ण को स्वीकार-योग्य बनेगा ही। (इसमें वैदर्भी-रुक्मिणी-सत्यभामा, कालिन्दी, भद्रा आदि श्रीकृष्ण की रानियों के नाम व्यंजित हुए।)

पुष्पगिरि तिम्मन्न—पुष्पगिरि तिम्मन्न पापराजु के समसामयिक थे। इन्होंने 'समीर कुमार विजयमु' नामक सात आश्वासों का एक काव्य लिखा है। भर्तृहरि के सुभाषितों का अनुवाद भी इन्होंने किया है। इनका रचना-काल १७५० से १७६० तक था। इनकी कविता कोमल और प्रांजल है।

कस्तूरि रंग कवि—नियोगि-ब्राह्मण-परिवार में इनका जन्म हुआ था। इनके पिता वेंकट कृष्णयामात्य थे और कामाक्षम्मा माता थीं। सन् १७६० ई० के आस-पास ये तंजौर संस्थान में थे। इन्होंने 'आनन्द रंगराट् छंदमु' नामक पिंगल-रचना, 'सांबनिघंटु' नामक एक ठेठ तेलुगु-शब्दों का कोश तथा 'कृष्णार्जुन संवादमु' नामक एक काव्य पाँच आश्वासों में लिखा है।

गणप वरपु वेंकट कवि—ये भी नियोगि-ब्राह्मण, गणपवर के निवासी और अप्पयामात्य के पुत्र थे। ये बड़े ही आत्मश्लाघी कवि थे। इनका रचना-काल प्रायः अठारहवीं सदी के बीच था। इन्होंने 'श्री प्रबन्ध राज वेंकटेश्वर विजय विलासमु' नामक काव्य की रचना एक ही आश्वास में की। इसके अतिरिक्त 'आंध्रनिघंटु', 'आंध्रकौमुदी', 'आंध्रप्रतापरुद्रीयमु', 'आंध्र रस मञ्जरी', 'परम भागवत चरित' तथा आंध्र द्विरूप कोशमु' आदि इनके दूसरे ग्रन्थ भी थे। परन्तु इनमें से दो-चार ग्रन्थ ही आजकल उपलब्ध हैं।

वेंकट कवि एक प्रतिभाशाली कवि थे और इनकी कविता में हृदय पक्ष का अभाव था। अतः इनके ग्रन्थों में अधिकतर संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थों के अनुवाद हैं या कला-चातुरी प्रदर्शित करने वाली कृत्रिम रचनाएँ। इस कवि में एक बड़ी कमी यह दिखाई देती है कि ये दूसरे कवियों के पद्यों को यथावत् अपनाने में भी नहीं झेंपते थे।

वेंकट कवि ऐसे दिखाई देते हैं कि मानो वे इस युग के कवि को कविता के सच्चे आनन्द-विधायक पद से च्युत करके कविता को एक प्रदर्शन के रूप में खड़ा करके दिखाने वाली किसी सरकस-कम्पनी के मैनेजर हों। जिनके हाथों मत्तेभ तथा शार्दूल आदि छन्द-रूपी जानवर अधमरी हालत में, मैनेजर की मर्जी के मुताबिक लाचार होकर चलने लगते थे और दुम हिलाने लगते थे। पाठकों के मनोरंजन के लिए उनका का एक उदाहरण दिया जाता है :

> "कै को की का के कै
> को का का किं क कूकि कूककु कोकी

का कुक कु केकि के किक
कू को को क्कूक किंक को कै कौ का''

'क' वर्ण की बारहखड़ी से एक छन्द बन गया। इससे अर्थ निकालने के लिए स्वयं सरस्वती को 'एकाक्षर कोश' रटना पड़ेगा।

अय्यलराजु नारायण कवि—इनके पिता सूरनार्य तथा माता कोंडमांबा थी। इन्होंने 'हंसविंशति' नामक पाँच आश्वासों का एक काव्य लिखा था। इन्होंने बीस कथाएँ अभिवर्णित की हैं। विषय-लोलुपता के प्रति पाठकों के मन में विद्रोह उत्पन्न करना इस कवि का चरम उद्देश्य है। इनके काव्य की शैली सुचारु एवं मधुर है।

चित्र कवि सिंगरार्य—इन्होंने 'ब्रिल्हणीयमु' नामक काव्य लिखा है। इनका रचना-काल अठारवीं सदी के उत्तरार्ध में माना जा सकता है। इनका काव्य श्री रामचंद्र जी के चरणों में समर्पित है। कथा का मूल स्रोत संस्कृत है। सिंगरार्य ने रसनीय भावुकता के साथ काव्य लिखा है।

पाल वेकरि कदिरीपति—इनका जन्म नायक वंश में हुआ था। मैसूर रियासत के अन्तर्गत जिला कोलारु में इनके पूर्वज रहते थे। इन्होंने 'शुक सप्तति' नामक काव्य लिखकर श्री रामचंद्र जी को समर्पित किया था। 'शुक सप्तति' का स्थान कथानक-काव्यों में अत्युत्तम है। परन्तु इसमें सत्तर कथाएँ प्राप्य नहीं हैं। इनके काव्य की शैली निस्संदेह स्तुत्य एवं प्रौढ़ है।

परशुराम पंतुल लिंगमूर्ति—ये नियोगि ब्राह्मण थे। राम मन्त्री इनके पिता तथा तिम्मांबा इनकी माता थीं। ये महादेव योगी के शिष्य थे। इनका निवास-स्थान वरंगल का एक प्रान्त मट्टेवाड़ा था। मट्टेवाड़ा में आजकल भी इनके वंशज वर्तमान हैं। ये महान् तत्त्वदर्शी कवि, 'भागवत' के प्रणेता पोतन्न के अपरावतार माने जाते हैं। इनकी अमर कृति 'सीतारामांजनेय संवादमु' गुरु महादेव के चरणारविंदों में समर्पित की गई है। ये किसी प्रबन्ध की रचना करने वाले थे कि श्री रामचन्द्र जी ने स्वप्न में दर्शन देकर इन्हें यह आदेश दिया कि वेदान्त-ग्रन्थ लिखने पर भी तुमको प्रबन्ध-

निर्माण-जैसा ही पावन यश मिलेगा। फलतः गूढ़-से-गूढ़ वेदान्त-विषय समझाने में भी कवि ने भावुकता से काम लिया और सर्वसाधारण उपमानों से विषय को हृदयंगम कराया। इसके पहले आश्वास में 'तारक योग', दूसरे में 'सांख्य योग' और तीसरे में 'अमनस्क योग' का प्रतिपादन किया। 'अमनस्क योग' में मन का लय हो जाता है। इस विषय को सुबोध बनाने के लिए कवि ने क्या ही अच्छा सादृश्य दिखाया है। वे लिखते हैं: "जैसे सूर्य के अस्तंगत होते समय उसकी किरणें उसीके साथ विलीन हो जाती हैं, वैसे ही मन में उठे हुए नाना प्रकार के भाव-विकार मन के नाश होने पर आप-ही-आप नष्ट हो जाते हैं।" लिंगमूर्ति के पुत्र ने भी अपने पिता के मार्ग पर चलकर 'शुक चरित्रमु' नामक एक वेदान्त-काव्य की रचना की। राममूर्ति की कविता भी स्तुत्य है।

ओरुगंटि सोमशेखर कवि—आप वैदिक ब्राह्मण थे। संस्कृत तथा आंध्र-भाषाओं के चूडांत पण्डित थे। इनका रचना-काल सन् १८०० ई० के आस-पास था। इन्होंने 'राम कृष्णार्जुन रूपनारायणीयमु' नामक त्र्यर्थि-काव्य की रचना की थी। इसमें कृष्ण, राम, तथा पांडवों की कथाएँ साथ-साथ वर्णित हैं। इनकी रचना प्रगल्भ तथा प्रौढ़ है।

पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि—ये नियोगि ब्राह्मण और गोपालामात्य के पुत्र थे। लक्ष्मण कवि का रचना-काल सन् १७७० से सन् १८५० ई० तक था। ये बड़े ही घमण्डी थे। लक्ष्मण कवि और शिष्टु कृष्ण मूर्ति शास्त्री में खूब प्रतिस्पर्धा थी। इन्होंने 'रावण दम्मीयमु' या 'लंका विजयमु' नामक त्र्यर्थि-काव्य की रचना की थी, इसमें रामायण और धर्माराव नामक किसी पद्मनायक की कथा जोड़ी गई। यह एक दूषण-काव्य है। धर्माराव ने लक्ष्मण कवि का खेत हर लिया था। इस पर कवि ने धर्माराव पर रावण का आरोप करके काव्य की रचना की थी।

ये प्रसिद्ध भाषा-सेवी सि०पि० ब्राउन साहब के समकालीन थे। ब्राउन साहब ने तेलुगु में बड़ा परिश्रम करके एक कोश का सम्पादन भी किया था। उन दिनों वे मछलीबन्दर में प्रांतीय अदालत के जज थे। लक्ष्मण कवि

और ब्राउन साहब में गहरा परिचय था।

लक्ष्मण कवि प्रायः अपने पांडित्य की अपेक्षा अपनी सद्यःस्फूर्ति और उक्ति-चमत्कार के बल पर दूसरों को नीचा दिखाते थे। पण्डितों में आत्म-श्लाघा और दूसरों की अवहेलना करने की कुरुचि ह्रास-युग के ही प्रधान लक्षण माने जा सकते हैं, जब कि कवि-प्रतिभा के अभाव की क्षति-पूर्ति दूसरी निन्द्य प्रवृत्तियों के द्वारा की जाती थी।

शिष्टु कृष्णमूर्ति शास्त्री—(१८००—१८७०) आप वैदिक ब्राह्मण थे। आपका जन्म-स्थान गोल्लपालेमु था। इनके गुरु बुलुसु अच्चय्य शास्त्री थे। साहित्य के प्रकाण्ड पण्डित होने के साथ-साथ आप संगीत के भी भारी विद्वान् थे। पुराण-पाठक भी ये अच्छे थे। इनकी सबसे मोहक कला यह थी कि जब ये कोई पुराण-कथा पढ़ते थे तब बीच में किताब बन्द कर लेते थे और पुस्तकीय शैली में आशु कविता के रूप में स्वयं छन्दों में गाकर सुना देते थे। श्रोताओं को कोई अन्तर नहीं दिखाई देता था। ये घर के कोने में पड़े-पड़े कविता लिखने वाले नहीं थे। इनका पूरा विश्वास था कि काव्यानुभूति से बढ़कर कवि को लोकानुभूति अपेक्षित है। इस उद्देश्य से ये हमेशा अपने शिष्यों और मित्रों के साथ भीड़ में (मेले आदि अवसरों पर) चले जाते थे। ये कालहस्ति के नेता दामेर्ल वेंकटपति के राजत्व में सन् १८३४ से १८८१ तक थे।

इन्होंने 'सर्वकामदा परिणयमु' नामक प्रबन्ध की रचना करके काकर्ल-पूडि जगन्नाथराजु को समर्पित किया है। यह कृति 'वसु चरित्रमु' के अनु-करण पर लिखी गई थी।

ओगिराल जगन्नाथ कवि—ये नियोगि ब्राह्मण और वेंकटेश्वरामात्य के पुत्र थे। इन्होंने 'सुमनोमनोभिरञ्जनमु' नामक एक काव्य पाँच उल्लासों में लिखा था। एक बार यह बी० ए० के छात्रों के लिए पाठ्य-ग्रन्थ भी निर्धारित किया गया था। इनकी कविता मनोहर तथा शैली मंजुल है।

माडभूषि वेंकटाचार्य कवि—वेंकटाचार्य कवि अपने समय के प्रसिद्ध कवि थे। इनके पिता का नाम नृसिंहाचार्य था। वेंकटाचार्य संस्कृत और

तेलुगु-भाषाओं के उद्भट विद्वान् थे। आप 'विद्वान्' तथा 'अभिनव पंडित-राज' आदि उपाधियों से विभूषित थे। इन्होंने 'भारताभ्युदयमु' नामक काव्य का प्रणयन किया था। इनका रचना-काल सन् १८५० से सन् १८६० तक माना जा सकता है।

मंडपाक पार्वतीश्वर कवि—(१८३३—१८६१) आप वैदिक ब्राह्मण थे और बोब्बिलि-संस्थान के आश्रय में रहते थे। संस्कृत और तेलुगु-भाषाओं पर इनका पर्याप्त अधिकार था। इन्होंने कुल मिलाकर ८० से अधिक काव्य लिखे। इनमें 'राधाकृष्ण संवादमु' नामक चार आश्वासों का काव्य अत्यन्त उल्लेखनीय है। इनके पूर्वज भी अच्छे कवि थे।

गोपीनाथमु वेंकट कवि—आपका जन्म वैदिक-ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। जिला नेल्लूर का लक्ष्मीपुर ग्राम आपका निवास-स्थान था। आप वेंकटगिरि के राजाओं के आश्रय में रहे और वहाँ पर कई ग्रन्थ लिखे। आपकी रचनाओं में प्राचीन कवियों-जैसा उचित संयम दिखाई देता है। इनके काव्यों में 'गोपीनाथ रामायणमु', 'कृष्ण जन्म खंडमु', 'शिशुपाल-वधमु' और 'भगवद्गीता शास्त्रमु' मुख्य हैं।

वेंकट कवि में साधुशीलता के साथ अच्छा कवि-हृदय भी था। इनकी 'रामायण' की प्रशंसा लोगों में बहुत है। इस सुयोग्य कवि का रचना-काल सन् १८७० से सन् १८९५ तक माना जा सकता है।

ह्रास-काल का समालोकन

ह्रास-काल अथवा क्षीण-काल की सामान्य प्रवृत्ति असभ्य शृङ्गार की ओर अधिक झुकी हुई थी। इसका स्पष्ट कारण यह है कि राजनीतिक धरातल पर आन्ध्रों की केन्द्रित शक्ति नष्ट होकर छोटे-छोटे खंडों में बिखर गई थी। अतः उनके राष्ट्रीय जीवन के सामने इन दिनों कोई उच्च आदर्श नहीं था। जीवन पौरुषमय और कर्तव्यनिष्ठ होने के बदले निष्क्रिय और ऐश्वर्य-भोग में निरत हो गया था। इस सामाजिक और राजनीतिक पतन का प्रतिबिम्ब ही हमें साहित्य में भी दृष्टिगोचर होता है। आन्ध्रों की ऐसी

बिखरी शक्ति के टुकड़े मदुरा तथा तंजौर आदि छोटे-छोटे राज्य ही थे।

तंजौर तथा मदुरा आदि प्रान्तों में उस समय उत्तान शृङ्गारी काव्य की परम्परा चल पड़ी थी। ये काव्य तीन प्रकार के थे—१. सांत्वनमु, २. विलासमु तथा ३. परिणयमु। इनमें प्रेम के सम्यक् विकास के लिए आवश्यक पृष्ठभूमि का अभाव था।

दूसरी प्रकृति यह थी कि कुछ कवि अपने हार्दिक पक्ष के अभाव की क्षति-पूर्ति बुद्धि पक्ष का प्रदर्शन करके करना चाहते थे। फलतः द्वयर्थि-काव्य आदि निकले। इनमें 'यादवराघवपाण्डवीयमु' मुख्य है। ऐसे काव्यों से पाठकों में कौतूहल की वृत्ति भले ही जाग्रत हो गई हो, उन्हें आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकी।

इस युग की तीसरी साहित्यिक प्रवृत्ति अच्चतेलुगु-काव्यों की है। ठेठ तेलुगु में काव्य लिखने की परम्परा प्रबन्ध-काल में पोन्नकंटि तेलगन्न के लिखे हुए 'ययाति चरित्र' के साथ प्रारम्भ हुई। इसका विकास इस युग में तिम्म कवि के द्वारा हुआ।'अच्चतेलुगु रामायणमु' तथा 'नीलासुन्दरी परिणयमु' इस परम्परा के अच्छे उदाहरण हैं। चौथी प्रवृत्ति दूषण-काव्यों की रचना में दिखाई देती है। इस परम्परा के उन्नायक जग्ग कवि थे। अडिदमु सूर कवि तथा पिंडिप्रोलु लक्ष्मण कवि आदि कवियों पर दूषण-कविता का प्रभाव दिखाई देता है।

युग की पाँचवीं साहित्यिक प्रवृत्ति आशु-कविता-प्रदर्शन तथा समस्या-पूर्ति है। इस परम्परा के निर्वाहक माडभूषि वेंकटाचार्य और शिष्टु कृष्णमूर्ति आदि कवि थे। यह परम्परा आधुनिक काल में तिरुपति वेंकटेश्वर कविद्वय के द्वारा पराकाष्ठा को प्राप्त हो चुकी थी।

छठी साहित्यिक प्रवृत्ति लक्षण-ग्रन्थों की रचना में दिखाई देती है। ये ग्रन्थ प्रायः तीन प्रकार के होते थे—१. पिंगल-सम्बन्धी, २. अलंकार-सम्बन्धी और ३. व्याकरण-सम्बन्धी। अडिदमु सूरकवि, कूचिमंचि तिम्मकवि तथा बालसरस्वती आदि इस परम्परा के उन्नायक कवि थे। 'आंध्रचन्द्रालोकमु' तथा 'लक्षणसारसंग्रहमु' इन ग्रन्थों में मुख्य हैं।

इस युग की सबसे महत्त्वपूर्ण घटनाएँ दो थीं—१. गद्य-साहित्य का सूत्रपात, तथा २. पद-साहित्य की निरुपम सर्जना। गद्य का आरम्भिक काल होने से लेखक गम्भीर विषयों को छोड़कर पौराणिक साहित्य की अवतारणा गद्य में करने लगे। 'जैमिनी भारतमु' इस युग की सबसे उत्तम रचना थी।

पद-साहित्य के दो महान् कवि इसी काल में हुए *१. क्षेत्रय्य* और *२. त्यागराजु*। इनमें क्षेत्रय्य को जीवन के यौवन-काल में अवश्य समय की हवा लगी थी, परन्तु त्यागराजु का शक्तिपूर्ण हृदय समय की कुप्रवृत्तियों से अछूता रहा। त्यागराजु के साधु-हृदय की झाँकी उनके पदों में सर्वत्र वर्तमान है। दक्षिण भारत में महल से झोंपड़ी तक और राजा से रंक तक, सभी त्यागराजु के पदों की मधुरिमा से अभिभूत हो जाते हैं। इन्होंने 'नौका चरित्र' और 'प्रह्लाद विजय' नामक दो यक्ष-गानों की रचना भी की है।

लिंगमूर्ति और *राममूर्ति* में हम दार्शनिक कवि के दर्शन करते हैं। इनकी कविता में वेदांत के गहन-ज्ञान की झाँकी मिलती है। इन पुरुष कवियों के साथ-साथ इस उपादेय साहित्य की श्री-वृद्धि करने वालों में *तरिगोंड वेंकमांबा*-जैसी कवयित्रियाँ भी उल्लेखनीय हैं।

अतः हम कह सकते हैं कि क्षेत्रय्य, त्यागराजु तथा लिंगमूर्ति आदि साधु कवि ह्रास-युग के तुच्छ शृङ्गार-रूपी कीचड़ में उगे हुए मनोहर पद्म हैं।

यह देखते हुए विषादपूर्ण आश्चर्य का अनुभव हो रहा है कि जिस युग में तरिगोंड वेंकमांबा-जैसी निःस्वार्थी, दार्शनिक कवयित्री उत्पन्न हुई, उसी युग में *मुद्दु पलनि*-जैसी कवयित्री भी वर्तमान थी, जिसके 'राधिका सान्त्वनमु' काव्य में तुच्छ शृङ्गार की कोई सीमा नहीं रह गई।

: ५ :

आधुनिक काल

(१८५०—१९५०)

प्रथम उत्थान

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि—सन् १६०० ई० तक देश-भर में अंग्रेजों का शासन दृढ़ता से स्थापित हो गया था। उनके शासन-विधान में अंग्रेज अफ़सरों का बड़ा प्राचुर्य था। इनमें से इने-गिने अफ़सर देशी भाषाओं की योग्य सेवा करते थे। तेलुगु-भाषा-सेवी के रूप में हम सि० पि० ब्राउन महोदय को पाते हैं। इन्होंने एक बड़े कोश का सम्पादन 'ब्राउन निघण्टु' नाम से किया है। इसके सम्पादन में हाथ बटाने वाले जूलूरि अप्पय्य शास्त्री आदि देशीय पण्डित थे। उन दिनों देशीय पण्डित बहुत बुरे फँसे थे। ब्राउन साहब ने एक स्थल पर लिखा है कि ये पण्डित घूमने वाले ग्रन्थालय हैं और तीस रुपये मासिक पर संतुष्ट हैं। अस्तु !

राजा राममोहन राय के दिखाये हुए पथ पर चलने वाले महाकवि तेलुगु-प्रदेश में उदार-हृदय तथा समाज-सेवी श्री कंदुकूरि वीरेशलिंगम् पंतुलु थे। तब तक देश-भर में स्थान-स्थान पर ईसाई-मिशनों की स्थापना होकर उनके द्वारा हिन्दू-धर्म के बाह्याडम्बरों एवं बहुमूर्ति-पूजा पर भारी आक्रमण चल रहा था। ऐसे समय में बंग-प्रदेश में महर्षि देवेन्द्रनाथ ठाकुर तथा केशवचन्द्र सेन आदि सज्जनों के द्वारा ईसाई-धर्म से प्रभावित होकर ब्रह्म-

समाज की स्थापना हुई। श्री वीरेशलिंगम् पंतुलु ने (१८४८-१९१९) इस समाज की विचार-धारा के प्रचार में प्राणपण से काम किया था। इस युग में वीरेशलिंगम् पंतुलु का जो प्रभाव समाज और साहित्य पर पड़ा, वह अभूतपूर्व था। वीरेशलिंगम् पंतुलु के जीवन और आंध्रों की नव-जागृति में चोली-दामन का साथ था। पंतुलु के समकालीन कई कवि हुए, जिनके द्वारा साहित्य की सेवा अधिक हुई। इसी युग में नाटक तथा उपन्यास आदि साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों की नींव पड़ी।

अंग्रेजी के अधिकाधिक अध्ययन के द्वारा साहित्यकारों की रुचि अंग्रेजी साहित्य की नवीन प्रवृत्तियों का अनुकरण करने की ओर हुई थी। प्रसिद्ध अंग्रेजी साहित्यकार शेली और कीट्स की देखा-देखी तेलुगु-साहित्य की कविता में एक नवीन रोमांच (क्या भावों में, और क्या अभिव्यक्ति में) आने लगा। बंग-साहित्य का प्रभाव भी इस समय पर्याप्त पड़ा। साहित्य के ऐसे नवीन प्रयोगों के लिए 'साहिती-समिति' तथा 'नव्य साहित्य परिषद्' आदि साहित्यिक समितियों के द्वारा पर्याप्त प्रोत्साहन मिला। विशेषतः सन् १९१० से काव्य की नवीन धारा साहित्यिक क्षेत्र में बह निकली। फलतः तेलुगु-साहित्य में भी रहस्यवादी व छायावादी कविताओं की बाढ़ आ गई। इनके साथ-साथ गांधी जी के नेतृत्व में जब सन् १९२० से भारत के एक सिरे से दूसरे सिरे तक राष्ट्रीयता की लहर दौड़ी तब तेलुगु-साहित्य के क्षेत्र में एक स्वच्छ राष्ट्रीय काव्य-धारा बह पड़ी और पद्यों की अपेक्षा पदों में राष्ट्रीय भावों का व्यक्तीकरण होने लगा।

तेलुगु-साहित्य की एक विशिष्ट प्रवृत्ति यह भी है कि आंध्र अपने अलग प्रान्त के लिए सन् १९१० से आन्दोलन करने लगे थे। फलतः कवि आंध्रों के पुरातन वैभव का गुण-गान और वर्तमान अधोगति का दयनीय चित्रण करने लगे। परन्तु उनका प्रान्तीय अभिमान सदैव राष्ट्रीय अभिमान की अपेक्षा निचली सीढ़ी पर ही था।

काव्य के अतिरिक्त साहित्य के नवीन उत्थान के फलस्वरूप नाटक, उपन्यास, समालोचना, कहानी, गीति-नाटक तथा एकांकी आदि आधुनिक

प्रवृत्तियों का विकास यथेष्ट मात्रा में हुआ। मुख्यतः उपन्यास और कहानी का प्रशंसनीय विकास हो चला। रेडियो द्वारा आजकल रेडियो-नाटक भी प्रसारित हो रहे हैं।

हम कह सकते हैं कि प्रगतिवाद का प्रादुर्भाव सन् १६३० से माने जाने पर भी उसका सम्यक् विकास सन् १६४० से हो रहा है। नवयुवकों में रूसी विचार-धारा का जो प्रभाव है उसीके परिणामस्वरूप प्रगतिवादी सर्जना साहित्य में हो रही है। साथ ही देश में उपस्थित अन्न-संकट आदि समस्याओं से ऐसी रचनाओं को पर्याप्त प्रेरणा मिल रही है। इस विचार-धारा के प्रभाव से साहित्य के मूल्यांकन के विधान में भी भारी परिवर्तन हो रहा है।

नवीन विचार-धाराओं से प्रभावित न होकर अनुवाद-युग अथवा प्रबन्ध-युग के वर्णनों में ही चित्त लगाकर सन्तुष्ट होने वाले इने-गिने कवि भी अवश्य पाए जाते हैं। परन्तु जैसे समय का प्रभाव उनकी वाणी अथवा लेखनी पर नहीं पड़ा, वैसे ही उनकी रचनाओं का प्रभाव समाज पर भी नगण्य है।

सारांशतः हम यह कह सकते हैं कि आधुनिक काल के प्रथम उत्थान में गद्य का विकास और नाटकों का अनुवाद भली भाँति हुआ। द्वितीय उत्थान में कविता का नवीन रूप, रहस्यवाद, छायावाद आदि विशिष्ट प्रवृत्तियों को लेकर निखर उठा और तृतीय उत्थान में उपन्यास, एकांकी, कहानी आदि नवीनतम प्रवृत्तियों को तथा प्रगतिवादी कविता को भली भाँति विकास पाने का अवसर मिल रहा है।

प्रमुख कवि

परवस्तु चिन्नय्य सूरि—(१८०६-१८६२) आप चात्ताद वैष्णव थे। उनका जन्म-स्थान पेरुंबुदूर था। इनके पिता वेंकटरंगय्य और माता श्री निवासाम्बा थी।

आधुनिक तेलुगु-साहित्य के पथ-प्रदर्शक चिन्नय्य थे। इन्होंने 'बाल-व्याकरण' लिखकर तेलुगु-भाषा के मार्ग को प्रशस्त किया। इसकी रचना

संस्कृत-व्याकरण के अनुकरण पर हुई थी। तेलुगु-व्याकरण में भी प्रक्रिया भाग आदि प्रवृत्तियाँ हैं। 'बाल व्याकरण' का पठन-पाठन अनिवार्य रूप से अद्यावधि चल रहा है।

वैसे तो चिन्नय्य से पहले ही कलुवे वीरराजु आदि लेखकों ने गद्य की कृतियाँ लिखीं, परन्तु चिन्नय्य में हम गद्य की पण्डिताऊ शैली पाते हैं, जिसे 'ग्रान्थिकांध्र' कहते हैं। इनकी 'नीति चन्द्रिका' ऐसी ही गद्य-कृति है। ये मद्रास के पच्चय्यप्प आर्ट्स कालिज और प्रेसिडेन्सी आर्ट्स कालिज में तेलुगु के अध्यापक रहे हैं। इन्होंने एक कोश के निर्माण में भी हाथ लगाया था, परन्तु वह पूरा न हो सका। इनकी कृतियों में 'धातुमाला' तथा 'आन्ध्र-कादम्बरी' आदि हैं।

मण्डपाक पार्वतीश्वर कवि—(१८३३–१८९७) आप विशाखपट्टण में पालतेरु नाम के गाँव में पैदा हुए थे। काम कवि इनके पिता थे। पार्वतीश्वर कवि की रुचि प्रबन्ध-कविता तथा शतक-कविता में अधिक थी। आजकल इनकी लिखी हुई ८२ पुस्तकें उपलब्ध हैं, जिनमें 'राधाकृष्ण संवादमु', 'अमरुकमु' तथा 'कांची महत्त्वमु' आदि काव्य तथा 'सूर्य नारायणशतकमु' आदि शतक-पुस्तकें प्रसिद्ध हैं। ये आशु-कविता करने में बड़े ही चतुर थे। संयुक्त अक्षर प्रास-स्थान में रखकर आशु-कविता करना अत्यन्त कठिन है, परन्तु इनके लिए यह कला बाएँ हाथ का खेल थी। बोब्बिलि राजा के आस्थान में ये विद्वत्कवि थे।

बहुजनपल्लि सीतारामाचार्युलु—(१९२७--१८९१) इनका जन्म-स्थान नागपट्टन था। ये वैष्णव ब्राह्मण थे। इन्होंने पहले-पहल तेलुगु में प्रामाणिक कोश की रचना की। आधुनिक ढंग पर अक्षर-क्रम के अनुसार कोश लिखने का पहला श्रेय इन्हींको मिला। 'त्रिलिंग लक्षण-शेषमु' इनकी व्याकरण-कृति है। यह 'बाल व्याकरण' का परिशिष्ट है। यह चिन्नय्य सूरि के मुख्य शिष्य माने जाते हैं।

वीरेशलिंगम् पंतुलु—(१८४८--१९१९) आप नियोगि ब्राह्मण थे। इनके पिता सुब्बरायजी तथा माता पुन्नाम्बा थीं। श्री वीरेशलिंगम् जी का जन्म

ऐसे समय में हुआ था जब कि तेलुगु-प्रदेश पर अंग्रेज़ों का शासन तो स्थापित हो गया था, परन्तु उनकी विचार-धाराओं को अपनाने में लोग अपनी साम्प्रदायिक कट्टरता के मारे भारी असमंजस में पड़े थे। ऐसे समय में इस नवीन सभ्यता एवं जागृति को अपनाकर प्राचीन रूढ़िवाद एवं अन्ध-विश्वासों पर प्रबल आघात पहुँचाने वाले एक महान् व्यक्ति की आवश्यकता थी। वीरेशलिंगम् के जन्म से उस आवश्यकता की पूर्ति हुई। वे एक साथ समाज-सुधारक एवं साहित्यकार थे। सुधारक एवं समाज-सेवी के रूप में इनको अनेक लकीर के फकीरों से लड़ना पड़ा। इन्होंने बड़े बल तथा साहस के साथ बाल-विवाह, भूत-वैद्य आदि बुरे रिवाजों के विरुद्ध लड़ाई लड़ी। इन्होंने ही सर्व प्रथम स्त्री-शिक्षा तथा विधवा-विवाह की शास्त्रीयता और उपादेयता पर बड़ी तीव्रता के साथ घोषणा की। इस कारण कट्टरपन्थियों के द्वारा इनको कड़ी यातनाएँ झेलनी पड़ीं। अन्ततोगत्वा विजय इनकी ही हुई। आन्ध्र-प्रदेश में स्त्री-शिक्षा का प्रचार करने का प्रमुख श्रेय इन्हीं-को दिया जा सकता है। इनके नाम पर आजकल भी राजमहेन्द्रवर में एक हाई स्कूल चल रहा है।

इनका साहित्यिक व्यक्तित्व सबसे महत्त्वपूर्ण था इन्होंने तेलुगु-साहित्य के विकास के लिए अनेक प्रशंसनीय योजनाएँ बनाई थीं। गद्य की रचनाओं के द्वारा इन्होंने गद्य के विकास में सहायता पहुँचाई। तेलुगु-साहित्य में पहले-पहल नाटक तथा उपन्यास लिखने वाले आप ही थे। इन्होंने ही सबसे पहले अंग्रेजी साहित्य के अनुकरण पर तेलुगु में प्रहसन लिखे, अंग्रेजी नाटकों का अनुवाद किया तथा तेलुगु-कवियों की जीवनियाँ बड़े परिश्रम से तैयार कीं। तेलुगु-साहित्य की पहली 'आत्म-कथा' भी इनकी ही लिखी हुई है। इस प्रकार नाटक, उपन्यास आत्म-कथा तथा प्रहसन आदि कई साहित्यिक प्रयोगों का सूत्रपात तेलुगु-साहित्य में इन्हींके द्वारा हुआ।

काव्य के क्षेत्र में भी इनका स्थान सम्मानपूर्ण था। इन्होंने अपनी कृतियों में पुरानी परम्परा का पालन किया है। इनके ही प्रयत्न से तेलुगु-साहित्य में निरोष्ठ्य तथा ठेठ कृतियाँ निकलीं। तेलुगु-साहित्य के ये

प्रथम पत्रकारों में से भी थे। इनकी चलाई गई 'विवेक वर्धिनी' पत्रिका बहुत समय तक चली। कुल मिलाकर इनकी कृतियों की संख्या लगभग १३० है। इनकी सम्पूर्ण कृतियों का प्रकाशन १२ भागों में राजमहेन्द्री के हितकारिणी-समाज ने बड़ी सुरुचि तथा सुन्दरता के साथ किया है।

वेदं वेंकटराय शास्त्री—(१८५३--१९२९) इनका जन्म मद्रास के ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनकी माता का नाम लक्ष्मम्मा और पिता का नाम वेंकटरमण शास्त्री था। साधारणतया यह कहा जाता है कि कवि पण्डित नहीं हो सकता तथा पण्डित कवि नहीं हो सकता। श्री वेंकटराय शास्त्री इस प्रवाद के सर्वथा अपवाद थे। ये संस्कृत तथा तेलुगु के प्रकाण्ड पण्डित थे। इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय नेल्लूरु और जीवन के कुछ वर्ष मद्रास की कलाशालाओं में अध्यापन-कार्य में बिताए थे। दरिद्रता के चंगुल में फँसे रहने पर भी इनके चेहरे पर दीनता की झलक तक नहीं मिलती थी।

इन्होंने अपने नाटकों द्वारा तेलुगु के रंगमंच के विकास में बड़ी सहायता पहुँचाई। इन नाटकों में 'उत्तरराम चरित' तथा 'मालविकाग्नि मित्र' आदि अनुवाद हैं। 'प्रतापरुद्रीयमु' और 'बोब्बिलियुद्धमु' आदि मौलिक हैं। तेलुगु-गद्य के निर्माताओं में शास्त्री जी का स्थान बहुत ऊँचा है। इनके 'कथा-सरित्सागर' में तेलुगु-गद्य का निखरा हुआ रूप देखने को मिलता है। 'प्रसन्न राघव' नाटक के अनुवाद पर की गई उनकी समालोचना उनके प्रखर पाण्डित्य का उदाहरण है। शास्त्री जी का निर्मल यश उनकी अनमोल व्याख्याओं पर निर्भर है। इन्होंने तेलुगु के कई प्रबन्धों पर उत्तम व्याख्या लिखकर उन काव्यों के पठन-पाठन का मार्ग प्रशस्त किया था। इनमें 'आमुक्त माल्यदा' पर लिखी गई 'संजीवनी' नामक व्याख्या तथा 'शृङ्गार नैषध' पर लिखी गई 'सर्वंकष' नामक व्याख्या उल्लेखनीय हैं। इन व्याख्याओं में उनके उद्भट पाण्डित्य के दर्शन मिलते हैं। ये बड़े ही प्रामाणिक पण्डित एवं कवि थे। इनके द्वारा अनूदित ग्रन्थों में 'साहित्य-दर्पण' का अनुवाद भी पर्याप्त प्रसिद्ध है।

धर्मवरं रामकृष्णमाचार्य—(१८५३-१९१३) ये अनन्तपुर जिले के धर्मपुरि नामक गाँव में पैदा हुए थे और वैष्णव ब्राह्मण थे। रामकृष्णमाचार्य जी की साहित्यिक विशेषता इस बात में है कि इन्होंने पहले-पहल तेलुगु में मौलिक नाटकों की सर्जना पाश्चात्य एवं पौर्वात्य सम्प्रदायों को अपनाकर की। सन् १९१० ई० में गद्वाल-संस्थान के महाराजा ने इन्हें 'आन्ध्र-नाटक-पितामह' की उपाधि से विभूषित किया। ये केवल नाटक के ही प्रणेता नहीं, प्रत्युत एक ऊँचे दर्जे के अभिनेता भी थे। आप कन्नड भाषा के भी पण्डित थे। आपने कन्नड में २ और तेलुगु में १२ नाटक लिखे थे। आन्ध्र-प्रान्त के प्रत्येक रंगमंच पर इनके नाटक खेले गए—उनमें विशेषतः 'चित्र नलीयमु' और 'विषाद सारंगधर' अतीव प्रसिद्ध हुए। इनके नाटकों में पद्यों की भरमार है। उस समय का वातावरण ही ऐसा था।

कृष्णमाचार्य जी की प्रगतिशील दृष्टि का परिचय इस बात से मिलता है कि इन्होंने अंग्रेजी नाटकों के ढंग पर दुःखान्त नाटक भी लिखे हैं। इनका 'विषाद सारंगधर' तेलुगु के नाटक-साहित्य में एक उत्तम 'ट्रेजेडी' है, जिसकी कथा कुणाल की कथा से सादृश्य रखती है। इस इतिवृत्त की ऐतिहासिकता संदिग्ध है। आचार्य जी ने ही पहले-पहल अपने नाटकों में अंग्रेजी के ढंग पर दृश्यों की आयोजना की है।

वड्डादि सुब्बराय कवि—(१८५४–१९३८) आप नियोगि ब्राह्मण और कुशल अध्यापक थे। राजमहेन्द्री की कलाशालाओं में आपने हजारों शिष्यों को तेलुगु की शिक्षा दी। कहा जाता है कि इनकी अध्यापन-कला से मुग्ध होकर स्वयं इनके प्रिन्सिपल भी आड़ में खड़े होकर सुना करते थे। आप कुशल अध्यापक ही नहीं, प्रत्युत चतुर कवि भी थे। इनके द्वारा अनूदित नाटकों में 'वेणीसंहारमु' पर्याप्त प्रसिद्ध है। इनकी रचनाओं में ओज गुण प्रचुर मात्रा में है। उन दिनों कवियों में आशु-कविता की लत-सी लग गई थी, आप इसके विरुद्ध थे। आप सोच-विचारकर और बड़ी सावधानी से कविता लिखते थे। फलतः उनकी कविता में चुस्ती तथा प्रांजलता का

प्राधान्य होता था। आप अच्छे सूक्तिकार तथा शतककार भी थे। 'भक्त-चिन्तामणि' नामक उनके एक शतक में बड़े ही मार्मिक भावों का सरस उन्मीलन हुआ है। उनके हृदय के उद्‌गार हर पद्य में बड़ी शक्ति के साथ निकलते हैं, जिससे यह स्पष्ट लक्षित होता है कि ये भक्त भी चरम कोटि के थे। पण्डितों ने इनकी काव्य-कला पर रीझकर इनको 'कविशेखर' की उपाधि से विभूषित किया था।

कोलाचलमु श्रीनिवासराव—(१८५४–१९१९) इनका जन्म-स्थान जिला बल्लारी का कमलापुर नामक स्थान था। बल्लारी में वकालत करते हुए इन्होंने तेलुगु-साहित्य की अनमोल सेवा अपने नाटकों द्वारा की। उन दिनों तेलुगु का रंगमंच देश-भर में प्रसिद्ध था। तेलुगु के अभिनेतागण रंगून-जैसे सुदूर प्रान्तों में भी नाटक खेला करते थे। राव जी के नाटकों में 'रामराजु' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसका कथानक ऐतिहासिक है। जिसका सार इस प्रकार है—आन्ध्रों का वैभव विजयनगर साम्राज्य के साथ-साथ डूब गया। 'तालिलकोट' युद्ध में वह चकनाचूर हो गया। इनकी अन्य कृतियों में १. 'कालिदास', २. 'चन्द्रहास' तथा ३. 'प्रह्लाद' आदि उल्लेखनीय हैं।

जयन्ति रामय्या—(१८६०–१९४१) ये वैदिक ब्राह्मण थे। इनकी मेधा बड़ी तीव्र थी। इन्होंने बी० ए० की परीक्षा देकर केवल २७ वर्ष की अल्पायु में ही सन् १८८६ में बी० एल० की उपाधि भी प्राप्त कर ली थी। छोटे-मोटे व्यवसायों के अनन्तर आप प्रेसीडेन्सी मजिस्ट्रेट भी रहे थे। इनका साहित्यिक व्यक्तित्व बड़ा ही महत्त्वपूर्ण था। सन् १९१२ ई० में आन्ध्र-साहित्य-परिषद् काकिनाडा की स्थापना हुई। इस परिषद् के द्वारा इन्होंने कई प्राचीन ग्रन्थों का संकलन और प्रकाशन किया। उन दिनों कुछ सुधारवादी साहित्यकार 'व्यावहारिक भाषा' (बोल-चाल की जबान) को ग्रन्थ-प्रणयन की भी भाषा बनाने के पक्ष में थे। रामय्या जी इसके विरुद्ध थे। इनका मत था कि ऐसे सुधार से साहित्य एवं भाषा का गौरव बढ़ने के बजाय घट ही जायगा।

रामय्याजी ने ७०० शिला-लेखों का पाठ तैयार करके उनको प्रकाशन के निमित्त सरकार को दिया था। इनकी कृति 'शासन-पद्य-मंजरी' अत्यन्त लोकप्रिय है, जिसमें प्रसिद्ध शिला-लेखों का वर्णन है। 'सूरायान्ध्र-निघण्टु' नामक एक कोश का निर्माण भी रामय्या जी के निरीक्षण में श्री पिठापुर महाराजा के सौजन्य से चलता था। इन्होंने संस्कृत-नाटकों का सफल अनुवाद भी किया था, जिनमें 'उत्तर राम चरित' अत्यन्त प्रसिद्ध है। ऐसे स्वनामधन्य व्यक्ति को आन्ध्र-विश्वविद्यालय ने 'कलाप्रपूर्ण' की उपाधि से विभूषित करके प्रशंसनीय कार्य ही किया है।

गिडुगु वेंकटराममूर्ति पंतुलु—(१८६३–१९४०) आप भी नियोगि ब्राह्मण थे। पर्लाकिमिडि और राजमहेन्द्रवर में इन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय व्यतीत किया था। वेंकटराममूर्ति जी का साहित्यिक व्यक्तित्व अत्यन्त ही ओजस्वी था। पहले-पहल तेलुगु की भाषा-शैली में सुधार का सूत्रपात करने वाले आप ही थे। आपके द्वारा प्रवर्तित 'व्यावहारिकवाद' का सारांश यह है कि काव्य और पुस्तकीय भाषा भी बोल-चाल की होनी चाहिए। इनका मत था कि व्याकरण की शृङ्खलाओं में जकड़े रखने से भाषा का सहज माधुर्य नष्ट होता है। प्रारम्भ में इस वाद का विरोध पण्डितों ने बहुत किया था, परन्तु आजकल एक प्रकार का समझौता हो गया है। इस समझौते के फलस्वरूप उपन्यासों, पत्रिकाओं तथा कथा-कहानियों में वेंकटराममूर्ति जी के द्वारा निर्दिष्ट 'व्यावहारिक शैली' अपनाई गई, परन्तु काव्यों में 'ग्रान्थिक शैली' का प्रभाव ज्यों-का-त्यों बना रहा।

राममूर्ति एक उद्भट विद्वान् थे। तेलुगु के 'महाभारत' में से लक्ष्य-विशेषों को आप मौखिक ही कह सुनाते थे। भाषा-विज्ञान पर भी आपका बहुत अधिकार था। फलतः इन्होंने अपने स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान न देकर पहाड़ी सीमा में रहने वाले आदिवासियों के साथ मिल-जुलकर उनकी 'सवर भाषा' के लिए एक लिपि का आविष्कार ही नहीं किया, प्रत्युत एक बड़े 'कोश' का भी निर्माण कर दिया। 'सवर भाषा' मुण्डा-भाषा-परिवार में से एक है। आप घण्टों गंगा की अजस्र धारा की भाँति धारा-

प्रवाह भाषण देने वाले भी थे। इनकी कृतियों में १. 'गद्य-चिन्तामणि' तथा २. 'बाल-कवि शरण्यमु' बहुत प्रसिद्ध हैं। इस दृष्टि से देखने पर वेंकट राममूर्ति जी में हम आधुनिक काल के द्वितीय उत्थान के प्रथम दर्शन पाते हैं। ये इस द्वितीय उत्थान के मूल स्तम्भ माने जा सकते हैं।

काशीभट्ट ब्रह्मय्य शास्त्री—(१८६३–१९४०) ये वैदिक ब्राह्मण और कलक्टर के आफिस में कारिन्दे थे। बचपन से ही आपको साहित्य के अध्ययन एवं सृजन की धुन सवार हो गई थी। आप संस्कृत तथा तेलुगु के प्रकांड पण्डित थे। आपने वीरेशलिंगम् पंतुलु के 'सुधारवाद' के विरुद्ध प्रबल आन्दोलन किया था और सभा-समाजों में बड़े जोरों से धर्म-सम्बन्धी भाषण देते थे। अपने अमूल्य भावों को प्रकट करने के लिए ये 'आर्य मत बोधिनी' नामक पत्रिका का सम्पादन भी करते थे। इस पत्रिका में आपने कई महत्त्वपूर्ण निबन्ध भी लिखे थे। तेलुगु का निबन्ध-साहित्य इनके हाथों बहुत-कुछ मँज चुका था। नन्नय्य भट्ट, नाचन सोमन्न तथा रायनि भास्कर आदि पूर्ववर्ती कवियों एवं दाताओं के जीवन-काल पर इन्होंने अच्छा प्रकाश डाला है। ये अच्छे कवि भी थे। इनके 'तृण' तथा 'गोमहिष संवादमु' आदि कई खण्ड-काव्य प्रसिद्ध हैं।

सुब्बराय कवि (वासुदास)—(१८६३–१९३९) आप व्यापारी ब्राह्मण थे। यह कहना अत्यन्त कठिन है कि सुब्बराय जी भक्त थे या कवि। ये पहले भक्त और बाद में कवि थे। श्रीरामचन्द्र में इनकी अनन्य आस्था थी। इनका सारा जीवन 'ओंटिमिट्ट' कोदण्ड रामस्वामी जी के श्रीचरणों में समर्पित हुआ था। पत्रकारिता तथा नीति-कुशल कथाओं की रचना में (जिनके पठन-पाठन से स्त्रियों एवं बालकों का शील सुधर सकता था) आप बड़े कुशल थे। आपने 'भक्त संजीवनी' नामक पत्रिका का सम्पादन भी किया था। सुब्बराय जी की कविता के आदर्श महा भक्त पोतन्न थे। इनका सबसे बड़ा साहित्यिक उपहार 'वाल्मीकि रामायण' का आंध्रानुवाद है। इनकी प्रौढ़ कृतियों में 'कुमाराभ्युदयमु' तथा 'कौसल्या परिणयमु' उल्लेखनीय हैं। इनके अतिरिक्त 'आर्यकथानिधि' के छः भाग (जिनमें पुराणों की उत्तम

कथाएँ संग्रहीत हैं) गद्य में लिखे गए हैं। इन कथाओं की भाषा-शैली सरल एवं सरस थी। उन दिनों घर-घर में ये कथाएँ पढ़ी जाती थीं।

पानुगंटि लक्ष्मीनरसिंह राव—(१८६५–१९४०)इनका निवास-स्थान राजमहेन्द्रवर था। अंग्रेजी साहित्य में एडिसन का जो स्थान है, वही स्थान तेलुगु-साहित्य में लक्ष्मी नरसिंह राव जी का है। इन्होंने बड़े व्यंग्य के साथ 'साक्षी' नामक लेख-माला छः भागों में प्रकाशित की। इसमें आन्ध्र प्रान्त की सामाजिक कुरीतियों का भण्डाफोड़ किया गया है। इनके नाटकों में 'राधा कृष्ण', 'कण्ठाभरण', 'विप्रनारायण', 'पूर्णिमा' तथा 'पादुका' पट्टाभिषेकमु' आदि बड़े ही प्रसिद्ध हैं। इनका एक-मात्र ध्येय अंग्रेजी साहित्य के महान् नाटककार शेक्सपियर की भाँति तेलुगु में भी विविधता के साथ नाटकों की रचना करना था। यह प्रसन्नता और गौरव की ही बात है कि आप इस ध्येय में सफल रहे। इनको पीठिकापुर के राजा नियमित रूप से ११६ रुपये मासिक की वृत्ति आमरण देते रहे।

श्रीपाद कृष्णमूर्ति शास्त्री—(१८६६) आप वैदिक ब्राह्मण हैं। आपका बाल्य-काल एक वैदिक धर्मावलम्बी परिवार के वायु-मण्डल में बीता था। अपने पारिवारिक संस्कार के कारण आपने वेदों का अध्ययन किया था। छोटी आयु में ही इनको कविता का चस्का लग गया था और अब तक कुल मिलाकर लगभग दो सौ ग्रन्थों की रचना की है। क्या कनकाभिषेक, क्या गंडपेंडेर, क्या गजारोहण सभी प्रकार के आदर-सत्कारों के आप भाजन बने। इनकी उपाधियाँ 'कवि-सार्वभौम', 'आन्ध्र व्यास', 'अभिनव श्रीनाथ' आदि हैं। इन महानुभाव का सफल एवं सर्वोत्कृष्ट साहित्यिक यज्ञ 'महाभारत' का आन्ध्रानुवाद है। इन्होंने बड़ी ही योग्यता से इसका निर्वहन किया। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि उनसे पूर्ववर्ती कवियों में पृथक्-पृथक् कालों में तीन कवि इस महा कृति का निर्माण कर चुके थे। शास्त्री जी के इस अनुवाद में मूल ग्रन्थ का कोई अंश छूटने नहीं पाया। इनकी कृतियों में १. 'बोब्बिलियुद्ध', २. 'वेणीसंहारमु' तथा ३. 'भोजराजीयमु' आदि नाटक और 'महा भागवत' तथा 'रामायण' आदि काव्य उल्लेखनीय हैं। 'महा-

भारत' में लिखा हुआ कर्ण पर्व वास्तव में कर्ण पर्व है। मद्रास-सरकार ने आपको हाल ही में राज-कवि की उपाधि से सम्मानित किया है। आन्ध्र-विश्वविद्यालय ने भी आपको 'कला-प्रपूर्ण' की सम्मानपूर्ण उपाधि प्रदान की है।

चिलकमर्ति लक्ष्मीनरसिंहम्—(१८६७–१९४६) आप द्राविड शाखा के ब्राह्मण थे। निरन्तर अध्ययन में लगे रहने के कारण आप ४० वर्ष की आयु में ही अंधे हो गए थे। इनको 'आंध्र-मिल्टन' कहा जाता है। आप वीरेश लिंगम् पन्तुलु के जीवन तथा रचनाओं से बहुत प्रभावित थे। अतः इनमें हम समाज-सुधारक का रूप भी देखते हैं। प्रधानतः इन्होंने दृश्य-काव्य ही लिखे हैं। इनका 'गजोपाख्यान' प्रचलन के रूप में तेलुगु के नाटकों में सबसे प्रथम ठहरता है। अनुमान है कि इसकी अब तक एक लाख के लगभग प्रतियाँ बिक गई हैं। ये सफल उपन्यासकार भी थे। इनमें कुछ ऐतिहासिक, कुछ सामाजिक तथा कुछ व्यंग्यपूर्ण थे। इनके ऐतिहासिक उपन्यासों में 'अहल्या बाई', सामाजिक उपन्यासों में 'रामचन्द्रविजयमु' तथा व्यंग्यपूर्ण उपन्यासों में 'गणपति' अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। घण्टों तक भाषण देने की क्षमता इनमें भरपूर थी। अंधे होने के कारण आप केवल बोलते जाते थे और इनके शिष्य लिखते जाते थे। इन्होंने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपनी 'आप बीती' भी लिखी थी। इसमें कवि के यातना-पूर्ण जीवन की झलक मिलती है।

चिलुकूरि वीरभद्रराव—(१८७२–१९३९) आप भी नियोगि ब्राह्मण थे। इनका निवास-स्थान राजमहेन्द्रवर था। इन्होंने केवल आंध्रों के इतिहास की खोज में ही अपना सारा जीवन बिता दिया था। इनका 'आंध्रों का इतिहास' प्रामाणिक ढंग पर आंध्रों के विकास का दर्शन कराता है और इनकी यह कृति इस विषय की सबसे पहली है। यही इसकी विशेषता है। इनकी दूसरी कृतियों में १. 'अलिय रामरायलु' तथा २. 'तिक्कन्नसोमयाजी' आदि मुख्य हैं।

कोमर्राजु लक्ष्मण राव—(१८७७–१९२३) रावजी का जन्म पेनुगंचि

प्रोलु नामक स्थान में हुआ था। कलकत्ता-विश्वविद्यालय से इन्होंने एम० ए० की परीक्षा ससम्मान उत्तीर्ण की थी। कई भाषाओं के ज्ञाता होने के साथ-साथ आपने विशेषतः मराठी भाषा का भी गहरा अध्ययन किया था। ये प्रसिद्ध परिशोधक भी थे। इनके 'हिन्दू महम्मदीय युगमु' तथा 'शिवाजी चरित्रमु' आदि ग्रन्थों से अपूर्व इतिहास-प्रेम का परिचय मिलता है। 'विज्ञान-चन्द्रिका' नामक ग्रन्थ-माला की स्थापना करके आपने कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकों का प्रकाशन किया था। साथ ही 'आंध्र विज्ञान सर्वस्व' नाम से तेलुगु में एक बृहद् कोश (Encyclopaedia) का सूत्रपात भी किया था, परन्तु दुर्भाग्यवश इसके दो भाग ही प्रकाशित हो पाए थे कि रावजी का देहान्त हो गया।

जनमंचि शेषाद्रि शर्मा—(१८८२--१९५०) आपका जन्म वैदिक ब्राह्मण-परिवार में हुआ था। इनका निवास-स्थान कडपा नामक स्थान में था। बचपन में आप पैदल ही बनारस चले गए थे और वहीं इन्होंने शिक्षा-दीक्षा पाई। विद्याध्ययन के उपरान्त आप यावज्जीवन कडपा में एक हाई स्कूल में तेलुगु के अध्यापक रहे। अष्टादश पुराणों में से कई पुराण अनुवाद हुए बिना रह गए थे, अतः शर्माजी ने इनमें से 'ब्रह्माण्ड पुराण' तथा 'ब्रह्म पुराण' आदि का सफल काव्यानुवाद किया। इनमें से अधिकांश प्रकाशित भी हैं। सृजनात्मक साहित्य के अतिरिक्त आपने आलोचनात्मक साहित्य का भी अच्छा निर्माण किया था। उनकी 'मनुचरित्र हृदयाविष्करण' ऐसी ही समालोचना की उत्तम पुस्तक है। इनके काव्यों में १. 'सर्वमंगला परिणयमु' तथा २. 'ललितोपाख्यानमु' मुख्य हैं।

'तिरुपति' 'वेंकट कवुलु'—(१८७१–१९१९ : १८७०–१९५०) ये दोनों कवि मिलकर एक साथ कविता लिखते थे। इनके अलग-अलग नाम इस प्रकार हैं। १. दिवाकर्ल तिरुपति शास्त्री तथा २. चेल्लपिल्ल वेंकट शास्त्री। इन दोनों ने तेलुगु-कविता को राज-दरबार के घेरे से निकाल-कर जन-साधारण में प्रचलित किया। इन कवियों का विकास ऐसे समय हुआ था जब कि लोगों पर अंग्रेजी की धाक जम गई थी तथा वे अपनी

मातृ-भाषा की उपेक्षा करने लगे थे। इन्होंने अवधान-कविता के प्रदर्शन द्वारा जनता में मातृ-भाषा की ओर श्रद्धा बढ़ाई। आप लोग एक साथ १०० पृच्छकों के उनके इष्ट के अनुसार निर्वाचित विषयों पर चुने वृत्तों में कविता का एक-एक चरण कह देते थे। फिर इस प्रकार चारों चरण कहने के बाद १०० पद्यों को मौखिक रूप से बोल देते थे। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रदर्शन के लिए धारणा-शक्ति की एकाग्रता कितनी आवश्यक है। वैसे तो आशु-कविता, अवधान-कविता और चाटु-कविता इनसे पहले ही आरम्भ हो गई थी, परन्तु इनका पूर्ण विकास इन्हींके द्वारा हो पाया। इनके गुरु स्वनामधन्य चर्ल ब्रह्मय्य शास्त्री थे। ये दोनों सहपाठी तथा सहकवि थे।

इन दोनों ने कई नाटक तथा काव्य भी लिखे। इन्होंने समूचे 'महाभारत' को दृश्य-काव्यों के रूप में लिखा था। ये नाटक अतीव लोकप्रिय हुए थे। इनके श्रव्य-काव्यों में नवीन कविता-धारा का आभास और संकेत अवश्य मिलता है। ये केवल कवि ही नहीं, प्रत्युत कवि-स्रष्टा भी थे। इनके शिष्यों में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण, तथा वेलूरि शिवराम शास्त्री मुख्य हैं। खेद है कि इनमें से तिरुपति शास्त्री की असामयिक मृत्यु हो गई। आंध्र-विश्वविद्यालय ने वेंकट शास्त्री जी का सम्मान उन्हें 'कला प्रपूर्ण' की उपाधि प्रदान करके किया। वेंकट शास्त्री जी मद्रास-सरकार में तेलुगु के प्रथम राज-कवि भी रह चुके हैं। इन कवियों के काव्यों में १. श्रवणानन्दमु', २. 'बुद्धचरित्रमु' और ३. 'देवी भागवतमु' मुख्य हैं।

द्वितीय उत्थान

आधुनिक काल के द्वितीय उत्थान में मुख्यतः खण्डकाव्य, गीति-काव्य, मुक्तक रचना तथा गल्प-रचना का ही अधिक विकास हुआ है। हमने देख लिया है कि प्रथम उत्थान में नाटकों की रचना ही अधिक हुई थी। तेलुगु के रंगमंच का अधिक प्रचार हुआ था। इस द्वितीय उत्थान तक शिक्षित युवकों पर पाश्चात्य साहित्य के स्वच्छन्दतावाद, रहस्यवाद तथा

प्रतीकवाद आदि का गहरा प्रभाव पड़ा था। बंग-साहित्य की देखा-देखी तेलुगु में नवीन कल्पनाओं की रचनाएँ होने लगीं। विशेषतः रवीन्द्र, बंकिम, तथा रमेशचन्द्र दत्त की रचनाओं के अनुवाद खूब प्रकाशित हुए। आशु-कविता का जोर इस उत्थान के पहले इधर-उधर दिखाई देने पर भी क्रमशः घटने लगा और पाश्चात्य नाटकों के अनुकरण पर नाटक लिखे जाने लगे। धीरे-धीरे नाटिकाओं और एकांकियों का भी प्राचुर्य होने लगा। समालोचना तथा निबन्ध-साहित्य में भी इसमें अभीष्ट प्रगति हुई।

प्रमुख कवि

अव्वारि सुब्रह्मण्य शास्त्री—(१८८३-१९३५) आप वैदिक ब्राह्मण और संस्कृत तथा तेलुगु के प्रकाण्ड पंडित थे। इनके गुरु का नाम वेंकट शास्त्री थे। आप बड़े उत्साह से तेलुगु एवं संस्कृत में आशु-कविता किया करते थे। तेलुगु में संस्कृत के रीति-ग्रन्थों का सफल अनुवाद भी आपने ही किया था। इनमें 'आंध्रकाव्यादर्श' मुख्य है। ये अच्छे समालोचक भी थे। 'काव्य नाटकादि परिशीलन' में आपने 'उत्तर रामचरित' आदि नाटकों पर गम्भीर समालोचनाएँ लिखी हैं।

वेलूरि शिवराम शास्त्री—(१८९२) आप वैदिक ब्राह्मण हैं। संस्कृत एवं तेलुगु के महापण्डित और बंगला, फ्रेंच, अंग्रेजी आदि भाषाओं के अच्छे ज्ञाता हैं। तिरुपति वेंकटेश्वर कवुलु के प्रधान शिष्य हैं। कविता के आरम्भ-काल से ही आप आशु कविता और शतावधान करने लगे थे। जीवन में एक बार प्रबल आघात पड़ा तो साहित्यिक व्यवसाय में कुछ उदास बने। फिर कई कथाएँ और अनुवाद इन्होंने लिखे। घर में आग लगी तो इनकी हजारों पुस्तकें जल-भुन गईं। विशेषतः इनमें शरच्चन्द्र की पुस्तकों के अनुवाद और महात्मा गांधी की आत्म-कथा का अनुवाद बहुत प्रसिद्ध हैं। आजकल शास्त्री जी का नाम लोगों में कथाकार के रूप में बहुत प्रसिद्ध है।

तल्लावझल शिवशंकर शास्त्री—(१८९२ ई०) आप भी वैदिक ब्राह्मण हैं। इनकी रचनाएँ सन् १९११-१२ से निकलने लग गई थीं। ये संस्कृत, पालि, हिन्दी और बंगला के अच्छे विद्वान् हैं। शरच्चन्द्र जी की

'अरक्षणीया' का पहला अनुवाद इन्हींका है। आप काव्यों में 'ग्रान्थिक शैली' (Classical style), नाटकों में 'मिश्रित शैली' तथा उपन्यासों और कहानियों में 'व्यावहारिक शैली' को पसन्द करते हैं। ये कवि ही नहीं, कवि-स्रष्टा भी हैं। स्वच्छन्दतावाद का पूरा प्रभाव इनकी कविता में देखा जाता है। नवयुवकों पर शास्त्री जी का प्रभाव अधिक है। इनकी प्रेरणा से ही कई सालों तक 'सखि', 'साहिती' और 'प्रतिभा' नामक साहित्यिक मासिक पत्रिकाएँ चली थीं। इनके काव्यों में 'हृदयेश्वरी', पद्मावती' 'चरण-चारण चक्रवर्ती', तथा 'कविप्रिया' और उपन्यासों में 'महाराष्ट्र जीवन प्रभात' और 'जीवन-संध्या' उल्लेखनीय हैं।

'हृदयेश्वरी' में आत्मपरक कविता (Subjective Poetry) की चरम सीमा हम पाते हैं। इसमें नायिका केवल उपभोग की वस्तु न रहकर आराध्य देवी बन जाती है। इनकी रचनाओं के भाव सुकुमार तथा भाषा सबल एवं सजीव है। इनकी साहित्य-सेवा प्रयोगात्मक (experimental) दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है। ये 'साहिती समिति' और 'नव्य साहित्य परिषद्' के संस्थापक हैं।

कवि-सम्राट् विश्वनाथ सत्यनारायण—(१८९२) इनके भाई वेंकटेश्वलु भी एक अच्छे कवि हैं। एम० ए० की परीक्षा पास करने के उपरान्त आजकल आप विजयवाड़ा के आर्ट्स कालिज में तेलुगु के आचार्य हैं। इनका साहित्यिक व्यक्तित्व महत्त्वपूर्ण है। उन दिनों तिरुपति कवुलु के प्रभाव से अनधिकारी लोग भी सरलता से कवि बन बैठते थे। कविता पानी की तरह बहने लगी थीं। उसमें कोई सार नहीं था। सत्यनारायण जी के आगमन से साहित्य के क्षेत्र में एक नया वसंत लहलहा उठा। उनमें नई-नई भावनाओं को अपनाते हुए भी भारतीय रंग में उन्हें रँगने की भरपूर क्षमता है। जिस सर्वतोमुखी प्रतिभा से इन्होंने साहित्य के प्रत्येक कोने को जगमगाया है, वैसी अन्य कवियों में दुर्लभ है। काव्य, महाकाव्य, खण्ड-काव्य, गीत-काव्य, नाटक, कहानियाँ, उपन्यास, तथा आलोचना-साहित्य आदि साहित्य के सभी अंगों को इनकी लेखनी ने उज्ज्वल बना दिया। इनकी

कविता की आधार-भूमि सुदृढ़ है आर्य-संस्कृति में, भावनाओं का विहार है सारे विश्व में, तथा हृदय का विश्राम है प्राक् और प्रतीची वादों के सामंजस्य में। इनकी भाषा-शैली विषय के अनुरूप स्वयं बनती चलती है। इनके काव्यों में 'आंध्र-प्रशस्ति', 'शृङ्गार वीथी', 'शशिदूतमु', 'तेलुगु ऋतुवुल' तथा 'किन्नेरसानिपाटलु' मुख्य हैं। उपन्यासों में 'वेयिपडगलु', 'चेलियलिकट्ट' तथा 'एकवीरा' उल्लेखनीय हैं। इनमें 'वेयिपडगलु' संस्कृति का बृहद् कोश भी कहा जा सकता है। मानव-जीवन का विश्लेषण इसमें बहुत अच्छा हुआ है। आजकल सत्यनारायण जी 'श्रीमद्रामायण' महाकाव्य की रचना में लगे हुए हैं। निस्सन्देह इनकी प्रखर प्रतिभा के लिए 'रामायण' एक विस्तृत क्रीड़ा-स्थल है।

रायप्रोलु सुब्बाराव—(१८९२) इनके जीवन का बहुत-सा समय हैदराबाद के विश्वविद्यालय में बीता। आप वहाँ तेलुगु-विभाग के अध्यक्ष रह चुके हैं। आजकल पूर्ण विश्राम कर रहे हैं। आप स्वच्छन्दतावादी कविता के, जिसको तेलुगु में भाव-कविता कहते हैं, अग्रदूत माने जाते हैं। सन् १९१२ में इन्होंने 'ललिता' नामक एक काव्य की रचना नवीन भावों के साथ की। इनके लिखे हुए 'तृण कंकण' नामक एक और काव्य से नवयुवकों को नई कविता में बड़ी प्रेरणा मिली। राव जी में सौन्दर्य की उपासना के साथ आध्यात्मिक भाव-सम्पदा भी संचित है। ये 'शान्तिनिकेतन' में रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सम्पर्क में रह चुके हैं। अतः इनकी कविता में प्रकृति-सुषमा का मनमोहक वर्णन मिलता है। इन्होंने कई पद्यों के द्वारा आंध्रों के पुराने वैभव का यशोगान भी किया है।

इनकी विशिष्टता इस बात में भी है कि इन्होंने काव्य की नई परम्परा के लिए 'रम्यालोकमु' और 'माधुरी दर्शनमु' नामक दो रीति-ग्रन्थ लिखे, जिनके अध्ययन से जिज्ञासु नवयुवकों को नई कविता का परिचय मिल जाता है। इस प्रकार आप कवि और आचार्य दोनों हैं।

इनकी कृतियों में १. 'स्नेहलता', २. 'कष्टकमला' तथा ३. 'मधुकलशमु' (उमर खैयाम की रूबाइयों का अनुवाद) आदि पुस्तकें भी

प्रसिद्ध हैं।

पिंगलि लक्ष्मीकांतमु और काटूरि वेंकटेश्वर राव–(१८६४ : १८६५) आप दोनों नियोगि ब्राह्मण हैं। दोनों मिलकर कविता लिखते हैं। दोनों ही वेंकट शास्त्री जी के शिष्य हैं। दोनों प्रकृति के उपासक हैं। इनकी कविता की शैली नवनीत के समान कोमल है। इनकी पहली कृति 'तोलकरि' में वर्षा का वर्णन अत्यन्त पटुता पूर्वक किया गया है। इनकी प्रधान कृति 'सौन्दरनन्दमु' है। इसकी रचना संस्कृत के 'सौन्दरनन्दमु' के अनुकरण पर हुई है। इसमें शान्त और शृङ्गार रसों का संघर्षण दिखाया गया है। गौतम बुद्ध के जीवन से यह कथा सम्बन्धित है, अतः उपादेय है। इनमें से वेंकटेश्वर राव जी की कृतियाँ 'स्वप्नवासवदत्ता' (नाटक) तथा 'नल्लगलुव' (उपन्यास) अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। लक्ष्मीकांतमु ने 'द्विपद-भारतमु' का अच्छा सम्पादन किया है।

दुव्वूरि रामिरेड्डि—(१८६५--१९४७) इनका जन्म रेड्डि-परिवार में हुआ था। इस उत्थान के कवियों में इनका सम्मानपूर्ण स्थान है। इनकी कृतियों में १. 'कृषीवलुडु' तथा २. 'पानशाला' (उमर खैयाम का अनुवाद) बहुत प्रसिद्ध हैं। 'पानशाला' के द्वारा ही रेड्डि का यश चारों ओर फैला था। तेलुगु-साहित्य में हालावाद का अवतरण करने वाले यह पहले कवि थे। इनका अनुवाद नितान्त सफल है। इनकी दूसरी कृतियों में 'वनकुमारी' और 'पलित केशमु' मुख्य हैं।

देवुलपल्लि कृष्ण शास्त्री—(१८९७) शास्त्री जी आजकल मद्रास में रहते हैं। ये आंध्र-साहित्य के शेली माने जाते हैं। इनके पिता तम्मन्न शास्त्री भी अच्छे कवि हैं। सन् १९१८ में बी० ए० की उपाधि प्राप्त की। स्वतन्त्र विचार का होने के कारण ये कई साल तक कहीं नौकरी नहीं कर सके। इनकी कविता में दुःख की संवेदना हम अधिक पाते हैं। प्रेम की मधुरिमा भी इसमें प्रचुर मात्रा में मिलती है। इनकी कृतियों में 'कृष्ण पक्षमु', 'कन्नीरु', (आँसू) तथा 'उर्वशी प्रवासमु' मुख्य हैं। इन कृतियों में शब्द-गुम्फन इतना अनूठा है कि कोमलता की होड़ में भाषा और भाव

दोनों लगे हुए हैं। हाल ही में 'मल्लीश्वरी' (चित्रपट) के कथाकार के रूप में इनका यश चारों ओर फैल गया। समालोचकों के मत में वह कला की अद्भुत सृष्टि है।

वेदुल सत्यनारायण शास्त्री—(१६००) शास्त्री जी अंग्रेजी नहीं जानते हैं। कविता के आरम्भ में आप पहले अवधान-कविता करते थे, परन्तु कुछ ही दिनों में यह जादूगरी छोड़ दी और उत्तम कविता लिखने लगे। इनकी कृतियों में 'दीपावली', 'विमुक्ति' और 'आराधना' मुख्य हैं। दीपावली में नवीन भावों और अलंकारों का समावेश है। समास-शैली स्पष्ट और स्वच्छ मात्रा में रहती है। इनके काव्य की एक-मात्र विशेषता यह है कि ये समय-बे-समय आँसू बहाने वाले कवि नहीं है। जीवन के सुखद पक्ष के वर्णन में ही आप अधिक रस लेते हैं। आप 'गौतमी-कोकिला' के नाम से विख्यात हैं, क्योंकि यह गौतमी अथवा गोदावरी जिले के अच्छे कवि हैं।

नोरि नरसिंह शास्त्री—(१६०० ई०) शास्त्री जी का प्रवेश संस्कृत-साहित्य में यथेष्ट है। आप 'नव्य साहित्य परिषद्' और 'साहिती-समिति' के प्रतिष्ठित सदस्य तथा कार्य-सचिव हैं। इन्होंने कहानी, एकांकी तथा पद्य-नाटिकाओं की रचना की है। आप एक ओर संस्कृत के 'देवी भागवत' का आंध्रानुवाद कर रहे हैं तो दूसरी ओर ऐतिहासिक उपन्यासों की सर्जना में व्यस्त हैं। इनकी काव्य-कृतियों में 'गीतमालिका' तथा 'तेने तेट्टे' और उपन्यासों में 'नारायण भट्ट' और 'रुद्रमदेवी' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। 'नारायण भट्ट' की कथा नन्नय के मित्र-कवि के जीवन का आधार लेकर चली है। 'रुद्रमदेवी' तो काकतीय वंश की इतिहास-प्रसिद्ध रानी है। शास्त्री जी 'कवि-सम्राट्' की उपाधि से विभूषित हैं।

अडिवि बापिराजु—(१८६५–१६५२) आप एक साथ कविता, चित्र-कला और संगीत में प्रवीण थे। देश के लिए जेल की यातनाएँ भी आप सह चुके थे। इतिहास के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी साहित्यिक विशेषता द्विमुखी है। एक ओर इस उत्थान की प्रमुख प्रवृत्ति—गीतिकाओं और

लोक-साहित्य की सर्जना में आप लगे तो दूसरी ओर ये उपन्यास-क्षेत्र में भी अपनी प्रतिभा दिखा सके। चित्र-कला में भी ये पारदर्शी थे। इनको प्रेरणा बंग प्रान्त के प्रमोदकुमार चट्टोपाध्याय के द्वारा मिली। इनके चित्रों में 'रुद्रमदेवी', 'खड्ग तिक्कन्न' तथा 'गौतम बुद्ध' आदि बहुत प्रसिद्ध हैं। उपन्यासों में 'हिमबिन्दु' और 'गोन गन्नारेड्डी' मुख्य हैं। कहानियों में 'शैल बाला' उल्लेखनीय है। 'नारायण राव' नामक उपन्यास पर इन्हें आंध्र-विश्वविद्यालय के द्वारा पाँच सौ रुपयों का पुरस्कार भी मिला था। यह एक सामाजिक उपन्यास है। तेलुगु-साहित्य के सफल कवि होने के साथ-साथ आप गण्यमान्य सफल उपन्यासकारों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं।

जाषुवा—(१८९५) आपका जन्म एक ग़रीब अछूत-परिवार में हुआ था। ये ईसाई हैं। जाषुवा पर विलायती वाङ्मय के प्रभाव का अभाव दिखाई देता है। इन्होंने परम्परागत काव्य-धारा ही अपनाकर काव्य-साहित्य को चमकाया था। विशेषतः इनके खण्ड-काव्यों में सामयिक समस्याओं, नेताओं तथा अन्य विषयों पर बड़ी मार्मिक कविता रची गई है। इनकी कृतियों में 'फ़िरदौसी', 'गब्बिलमु' और 'मुमताज' मुख्य हैं। 'फ़िरदौसी' में फ़ारसी शायर के जीवन पर प्रकाश डाला गया है और 'गब्बिलमु' में व्यंग का आश्रय लेकर अछूतों की शोचनीय दशा का वर्णन है। इनकी काव्य-शैली प्राञ्जल और मनमोहक है।

तुम्मल सीतारामभूर्ति चौधरी–(१९०१) चौधरी जी का जन्म 'कम्म'-परिवार में हुआ था। ये उच्चकोटि के राष्ट्रीय कवि हैं। इनकी विचार-धारा महात्मा गांधीजी के उपदेशों से प्रभावित है। इनकी ख्याति का प्रसार पहले-पहल महात्मा गांधी जी की आत्म-कथा के 'पद्यानुवाद' से हुआ। इनकी दूसरी कृति 'राष्ट्र-गान' है। इसमें आंध्रों के पुरातन वैभव का स्मरण दिलाते हुए इन्होंने आंध्रों को स्वावलम्बी और कार्यक्षम बनने का प्रबोधन दिया है। इनकी कविता में निःसर्ग-मधुरिमा की छटा है।

मल्लंपल्लि सोमशेखर शर्मा—(१८९१) शर्मा जी मद्रास में रहते हैं। बचपन से ही इन पर प्रसिद्ध इतिहास-वेत्ता वीरभद्रराव और

लक्ष्मणराव का प्रभाव है। शर्मा जी कार्य-कुशल और सरल प्रवृत्ति के हँसमुख व्यक्ति हैं। दक्षिण भारत के और विशेषतः आंध्रों के इतिहास का अपार ज्ञान इनको बहुत है। शर्मा जी की रचनाओं में इतिहास के तथ्यों के साथ-साथ विषय को हृदयंगम कराने वाली भावुक प्रतिभा भी दृष्टिगत होती है। ये लगातार पत्र-पत्रिकाओं में इतिहास के लेख प्रकाशित कराते रहते हैं। इन्होंने दो ग्रन्थ अंग्रेज़ी में लिखे, जिनका प्रकाशन आंध्र-विश्वविद्यालय के द्वारा हुआ है।[1] आजकल आप मद्रास की तेलुगु-भाषा-समिति के द्वारा एक बृहद् कोश के निर्माण में लगे हुए हैं।

वेटूरि प्रभाकर शास्त्री—(१८८२-१९५०) शास्त्री जी के जीवन के अन्तिम दिन तिरुपति में बीते थे। ये एक साथ उच्च कोटि के साहित्यकार, समालोचक तथा परिशोधक थे। साहित्यकार के रूप में इनकी छोटी-छोटी काव्य-कथाएँ 'कड्डुपु तीपु' और 'कपोत-कथा' प्रसिद्ध हैं। समालोचक के नाते इनकी 'शृङ्गारश्रीनाथमु', 'क्रीड़ाभिराममु' तथा 'कनकाभिषेकमु' नामक कृतियाँ प्रसिद्ध हैं। परिशोधक तथा सम्पादक के रूप में 'अन्नमाचार्य चरित्र', 'बसव पुराणमु' तथा- 'काटमराजु कथा' आदि अत्यन्त उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। निस्सन्देह इनकी लेखनी के द्वारा साहित्य की ठोस सेवा हुई है।

चिलुकूरि नारायणराव—(१८९०-१९५०) राव जी का प्रायः समस्त जीवन अनन्तपुर में गुजरा। आप अनन्तपुर के आर्ट्स कॉलिज में तेलुगु के प्राध्यापक रह चुके थे। संस्कृत, तेलुगु, गुजराती, कन्नड और अंग्रेजी भाषाओं से इनका अच्छा परिचय था। इनकी कृतियों की संख्या १०० से अधिक है। उनमें 'तेलुगु भाषा का इतिहास' (दो भाग), और 'Introduction to Dravidian Philology' भाषा-शोधन के अमूल्य ग्रन्थ हैं। 'अच्चि', 'अम्बा' और 'तिम्मरुसु' आपके उत्तम नाटक हैं। इनके मतानुसार तेलुगु-भाषा का विकास पैशाची प्राकृत से हुआ था।

1. 'Reddy kingdoms' and 'Forgotten Chapter in Andhra History'.

द्राविड-भाषाओं का अलग परिवार आप नहीं मानते थे। आपको आंध्र-विश्वविद्यालय ने 'कला प्रपूर्ण' की उपाधि से सम्मानित किया था। रावजी की रुचि लोक-साहित्य की ओर भी थी। आप राममूर्ति पंतुलु के शिष्य माने जाते हैं।

श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री—(१८६१) शास्त्री जी राजमहेंद्री में रहते हैं। इनका यश गद्य-रचनाओं पर टिका हुआ है। विशेषतः छोटी कहानी के क्षेत्र में इनका स्थान अभूतपूर्व है। इनकी कहानी-कला शत-प्रतिशत मौलिक है। यद्यपि उसमें विदेशी प्रभाव बिलकुल नहीं है, तथापि इनकी कहानियों के संवाद सहज एवं रोचक हैं। इनकी 'वड्लगिंजलु' तथा 'मार्ग-दर्शी' आदि कृतियाँ अतीव सुन्दर हैं 'राजराजु' इनका सफल नाटक है। आपने कई साल तक 'प्रबुद्धांध्र' नामक पत्र का सम्पादन भी किया था, जिसमें आप बड़ी निर्भीकता के साथ सामयिक समस्याओं पर टीका-टिप्पणी किया करते थे।

भमिडिपाटि कामेश्वर राव—(१८६७) आप आजकल राजमहेंद्री हाईस्कूल में कार्य कर रहे हैं। आपने हास्य-प्रधान रचनाएँ की हैं, जिनमें हास्य के विभिन्न रूप दृष्टिगोचर होते हैं। आप मनुष्य की दुर्बलताओं पर बड़ी मार्मिकता के साथ व्यंग करते हैं। आपकी कृतियों में 'कालक्षेपमु', 'अवुनु', 'अप्पुडु' तथा 'इप्पुडु' आदि मुख्य हैं। इनकी गति संगीत में भी अच्छी है। इन्होंने 'त्यागराजु' पर एक समालोचनात्मक पुस्तक भी लिखी है।

हास्य-परम्परा के दूसरे प्रसिद्ध लेखक *श्री मुनिमाणिक्यम् नरसिंह राव हैं।*

तृतीय उत्थान

तेलुगु-साहित्य के आधुनिक काल के तृतीय उत्थान में साहित्य का गति-विधान अत्यन्त तीव्र और बहुमुखी है। दूसरे महायुद्ध का अच्छा और बुरा प्रभाव तेलुगु-साहित्य पर भी जोरों से पड़ा। अकाल, अन्न-संकट और जीवन की विषम परिस्थितियों का चित्रण साहित्य में व्यंग रूप से ही नहीं, प्रत्युत

नग्न रूप में भी होने लगा। स्वच्छन्दतावादी अथवा रोमांचवादी कविता से नवयुवक कवि यह शिकायत करने लगे हैं कि इससे हम किसी निराले लोक में स्वाप्निक सुन्दरी के साथ सुख का अनुभव नहीं कर सकते और न असीम अथवा अनन्त के गुण-गान में ही समय बिता सकते। हमको साहित्य के द्वारा दृढ़ चेतना मिलनी चाहिए, स्त्रैणता नहीं। फलतः तेलुगु-साहित्य में इस अति नवीन मार्ग का प्रवर्त्तन 'सर्रियलिज़्म' और 'डाडायिज़्म' से हुआ। इस विचार-धारा के कवि ही प्रायः प्रगतिवाद के कवि भी रहे। 'सर्रियलिज़्म' 'डाडायिज़्म' और 'प्रगतिवाद' की कविताएँ यत्र-तत्र सन् १९४० से पहले भी दिखाई देती हैं, परन्तु साहित्य में इस परम्परा की विशेष ख्याति तथा प्रसार सन् १९४० ई० के अनन्तर हुआ, अतएव इस उत्थान का समय १९४० से माना जा रहा है।

द्वितीय उत्थान की कविता में नव्यता के साथ-साथ भव्यता भी है। इस उत्थान में मानो भव्यता के लिए गुञ्जाइश ही नहीं। 'सर्रियलिज़्म' और 'डाडायिज़्म' समाज पर असंतोष की भावना प्रकट करने तथा प्रलय का आह्वान करने के लिए प्रकट हुए। परन्तु अपनी इस साधना में कवियों ने न तो सुन्दरता का ही ध्यान रखा, न छन्द-बन्धन का और न शब्दार्थ-बोध का। एक प्रकार की गड़बड़ी और हड़बड़ी में ही ये नवीनता दिखाना चाहते हैं। इस परम्परा के अग्रदूत तेलुगु में *श्री०श्री०* हैं, जिनका पूरा नाम है *श्रीरंगं श्रीनिवासराव*। इनकी भावनाएँ इस प्रकार हैं :

'छन्दो बन्दो बस्तु लन्नी
छट् फट् फट् मनि त्रेंचि
Damnit एमिट्रा इदंटे
pray it is poetry अन्दां'

अर्थात् 'छन्द-बन्धन तोड़कर यदि कोई हमसे पूछे तो जवाब देंगे डामिट्! यही कविता है।'

डाडायिज़्म का तत्त्व इस प्रकार है : "सुन्दर क्या है? असुन्दर क्या है? महत्त्वपूर्ण, जोरदार और कमजोर क्या है? मैं क्या हूँ...... नहीं

जानता, नहीं जानता, जानता नहीं !" "डाडा, कला, साहित्य, नीति और समाज के प्रबल विरोध में है। डाडा और अधिवास्तविक पत्र-पत्रिकाओं में आत्म-हत्याएँ अतीव रोचक बनती हैं।"

श्री० श्री० के मतानुसार कविता के लिए बाघ से चीरा हुआ खून, रुद्राणी की नयन-ज्वाला, कालिका की लम्बी जिह्वा, प्रलय-समुद्र, झंझानिल, सिंह-गर्जन आदि विषयों की आवश्यकता है।

शिष्ट्ला इस परम्परा के दूसरे सफल लेखक हैं। इनकी कृतियाँ 'विष्णुधनु' तथा 'नवमिचिलुक' आदि हैं। इनकी 'सिपाही कहानियाँ' विद्रोही भावना को लेकर चली हैं। *श्रीरंगं नारायण बाबू* (१९१२) भी इसी परम्परा के दूसरे सफल लेखक हैं। इनकी 'रुधिर ज्योति' आदि कृतियाँ अत्यन्त ही प्रसिद्ध हैं।

पट्टाभि तेलुगु-प्रान्त के अहंभाववादी कवि हैं। इनकी उपमाएँ विचित्रता तथा आधुनिकता के साथ प्रयुक्त हैं :

'क्रासवर्ड पजिलस लागुन्न
नी कन्नुलनु साल्वु चेसे महाभाग्यं
ए मानवुनिदो कदा।'

अर्थात् 'क्रासवर्ड पजिल-जैसी तुम्हारी आँखों की समस्याओं को न जाने कौन बड़भागा सुलझा सकता है ?' लोगों का पिंड इन अधिवास्तविक तथा विनाशकारी कविताओं से जल्दी ही छूट गया, क्योंकि अब लेखक साहित्य की नकारात्मक प्रवृत्ति की अपेक्षा जनता से सम्बन्ध रखने वाले तथा उनकी समस्याओं को समझकर सुलझाने वाले साहित्य की साधना चाहते हैं। आन्ध्र-प्रान्त में प्रगतिशील लेखकों के संघ की स्थापना सन् १९४०ई० में हुई। उसके संस्थापक हैं श्री चदलुवाड पिच्चय्य जी नामक एक युवक साहित्यकार। पहले उच्चकोटि के लेखक इस ओर आकृष्ट हुए, परन्तु थोड़े ही दिनों में यह प्रकट हो गया कि इसका गहरा सम्बन्ध कम्युनिस्ट-पार्टी से है। इस संघ की साहित्यिक सर्जना रूसी विचार-धारा से अनुप्राणित है। ऐसी प्रगतिवादी प्रेरणा लेकर चलने वाले कवियों में श्री० श्री०, श्रीरंगं-

नारायण बाबू, दाशरथि, अनिसेट्टि सुब्बाराव, आरुद्र, आत्रेय, अजंता, मान्सु और रमणारेड्डि आदि मुख्यत: उल्लेखनीय हैं। श्री० श्री० ने अपनी कविताओं का एक संग्रह 'महाप्रस्थान' नाम से निकाला। इनमें 'मानवुडा', 'अद्वैतं', 'गर्जिंचुरष्या' तथा 'महाप्रस्थान' मुख्य गीत हैं। 'मानवुडा' नामक काव्य इतिहास के आरम्भ से मानव के क्रम-विकास पर प्रकाश डालते हुए नवयुग के आदमी के कर्तव्य का प्रबोध देता है। 'चलं' के अनुसार इनकी कविता मार्चिंग बैंड-जैसा प्रभाव डालती है। प्रगतिशील कवियों में हैदराबाद के *दाशरथि जी* का भी ऊँचा स्थान है। तेलंगाना के आन्दोलन में इनकी कविता का अच्छा विकास हुआ। इनकी कृतियाँ 'अग्निधारा' और 'रुद्रवीणा' बहुत प्रसिद्ध हैं। 'मस्तिष्कं लो लेबरेटरी' अर्थात् 'मस्तिष्क में लेबरेटरी' नाम की इनकी कविता इस परम्परा की उत्तम कविता है। इनमें रूसी प्रभाव की अपेक्षा अनुभव की तीव्रता अधिक है। अतः इनकी कविता में सहज उष्णता और अभिव्यक्ति की स्फूर्ति प्रचुर मात्रा में दृष्टिगत होती हैं।

अनिसेट्टि सुब्बाराव जी का जन्म १६२२ ई० में हुआ था। इनकी कविता की विशेषता यह है कि प्रगतिवादी रचना में ये कलात्मक दृष्टि से काम लेते हैं। इन्होंने कहानियाँ भी लिखी हैं। 'अग्निवीणा' इनकी कविताओं का संग्रह है। 'प्रति ओकड्डू शिवुड्ड नेड्ड' आदि इनकी प्रसिद्ध रचनाएँ हैं।

रामदास की कृति 'श्मशान' में एक विशेष प्रतिभा की झलक मिलती है। पहले ये शिव-भक्त थे, बाद में राधा-कृष्ण-प्रेमी हो गए और अन्ततोगत्वा साम्यवादी कवि। इनके मानसिक परिणाम की निस्संदेह एक विचित्र कथा है। इनकी कविता में भयानक रमणीयता है।

आरुद्र की कृति 'त्वमेवाहमु' भी पर्याप्त प्रसिद्ध है। कविता और विचार-धारा में ये अपने मामा से प्रेरित हैं।

हैदराबाद के दूसरे प्रगतिवादी लेखक हैं *श्री कालोजी नारायण राव*। इन पर न रूस का प्रभाव है और न किसी विदेशी भाषा का, ये तो

शत-प्रतिशत तेलंगाना के कवि हैं। अतः ये जनता के प्राणों के कवि हैं। तेलंगाने में इनके प्रबोध-गीतों का प्रचार बहुत है। इस समय के अन्य कवियों में *कुन्दुर्ति आंजनेयुलु, देशिराजु कृष्ण शर्मा* तथा *बालगंगाधर तिलक* मुख्य हैं।

गद्य की कृतियों के द्वारा अर्थात् नाटकों एवं कथाओं द्वारा इस विचार-धारा को आगे बढ़ाने वालों में *नार्लवेंकटेश्वर राव* ('आन्ध्र-प्रभा' के सम्पादक) और *पी० वी० राजमन्नारु* (मद्रास के चीफ जस्टिस) मुख्य हैं। रावजी की 'कोतगड्डा' और राजमन्नारु जी की 'एमि मगवाल्लु' कृतियाँ पर्याप्त प्रसिद्ध हैं।

इसी उत्थान में एक अन्य राजनीतिक वाद का प्रभाव भी कुछ अंश तक तेलुगु के साहित्यकारों पर पड़ा। एम० एन० राय ने कम्युनिज़्म के खिलाफ़ देश-भर में रेडिकलिज़्म का प्रचार किया। इससे प्रभावित होकर तेलुगु में 'प्रजा साहित्य परिषद्' की ओर से कई रचनाएँ निकलीं। ये लेखक मानवता पर अधिक जोर देते हुए अपनी रचनाओं में कला और सौन्दर्य की आलोचना भी अच्छी तरह करते हैं। इस परम्परा के लेखकों में *जि० वि० कृष्णराव* और *गोपीचन्द* उल्लेखनीय हैं। जि० वि० कृष्ण-राव साहित्य के सत्समालोचक भी हैं। 'काव्य जगत्तु' इनकी आलोचनात्मक कृति है। इसमें अंग्रेजी और संस्कृत-साहित्य के लक्षण-ग्रन्थों के आधार पर काव्य के तत्त्वों पर गम्भीरता के साथ विचार किया गया है। इनका खण्ड-काव्य 'शिवरात्रि' और कहानी-संग्रह 'चैत्ररथ' हैं।

गोपीचन्द रामस्वामी चौधरी के (जो स्वयं कवि थे) पुत्र हैं। ये अपने विचारों में स्वतन्त्र हैं। राजनीति पर भी इनकी लेखनी खूब चलती है। आधुनिक कहानीकारों और नाटककारों में इनका स्थान अग्रणी है। 'असमर्थुनि जीवित यात्रा' तथा 'देवुनि जीवितं' आदि इनके छोटे-छोटे उपन्यास हैं। इनकी रचना में सूक्ष्म काव्य का पुट रहता है।

पालगुम्मि पद्मराजु भी इसी उत्थान के सफल समालोचक एवं कहानी-कार हैं। ये व्यवसाय से वैज्ञानिक होने पर भी साहित्य की ठोस सेवा कर

रहे हैं। हाल ही में इनकी कहानी 'तूफ़ान' पर 'वर्ल्ड प्राइज़' मिला है। प्रतियोगिता में यह भारत की सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी गई है।

इस उत्थान में कुछ ऐसे कवि और लेखक भी हैं जो किसी वाद-विशेष से प्रभावित न होकर पुरानी परम्परा का पालन करते हुए भी नवीनता की साधना कर रहे हैं। इनमें कुछ ऐसे कवि भी हैं, जो राज-भाषा हिन्दी के अध्ययन से प्रभावित होकर अपनी रचनाओं में उस प्रभाव का परिचय दे रहे हैं। ऐसे मार्ग के प्रवर्त्तक *जंध्याल पापय्य शास्त्री* (१६१२) हैं। प्रधानतः ये गौतम बुद्ध और आधुनिक काल की विभूति महात्मा गांधी की करुणामयी विचार-धारा से प्रभावित हैं। इनकी कृतियों में 'उदय श्री', 'विजय श्री', 'करुण श्री' और 'करुणामयी' (नाटिका) प्रसिद्ध हैं। 'करुण श्री' में ये महात्मा गौतम बुद्ध की जीवनी को काव्यत्व प्रदान कर रहे हैं। इनकी कविता अतीव लोकप्रिय है।

एटुकूरि नरसय्य चौधरी (१६११-१६४६) की लेखनी अत्यन्त प्रौढ़ है। आप अंग्रेजी भाषा से अनभिज्ञ थे। संस्कृत और तेलुगु में इनका अच्छा प्रवेश था। आपने आंध्र-प्रान्त और भारत के वीरों की कथाओं का आधार लेकर तेलुगु में ओजपूर्ण काव्य लिखे हैं। इनकी कृतियों में 'मगुवमांचाल', 'अलगुराजु' तथा 'वीर भारतमु' आदि प्रसिद्ध हैं। 'वीर भारतमु' में सुभाषचन्द्र बोस आदि राष्ट्रीय नायकों का वर्णन किया गया है

गुरुजाड राघवराव जी भी इसी कोटि के कवि हैं। इनकी कृतियों में 'नवखाली' तथा 'बापू जी' अत्यन्त लोकप्रिय हैं। 'नवखाली' में उन दिनों के अकांड तांडव का जीता-जागता चित्रण हुआ है।

: ६ :

विविध प्रवृत्तियाँ

वैसे तो तेलुगु-साहित्य का विकास अधिकांशतः संस्कृत के काव्य-साहित्य से प्रभावित है फिर भी उसमें कुछ ऐसी विलक्षण प्रवृत्तियाँ भी हैं, जिनसे उसकी मौलिक सर्जना पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इन्हीं प्रवृत्तियों को परखकर साहित्यिक समालोचक तेलुगु-साहित्य की कविता की (१) मार्ग-कविता की धारा तथा (२) देशी कविता की धारा नामक दो धाराएँ मानते हैं। तेलुगु में मार्ग-कविता का प्रवर्त्तन संस्कृत-साहित्य के अनुकरण पर हुआ है। फलतः इस प्रकार के काव्यों में तत्सम शब्दों की बहुलता एवं समास-शैली का निर्वाह प्रचुर मात्रा में पाया जाता है। देशी कविता में ऐसी विशेषताएँ पाई जाती हैं, जिनके अध्ययन से हम इस निष्कर्ष पर पहुँच सकते हैं कि किसी बाह्य प्रभाव के बिना ही इसका विकास स्वाभाविक रूप में हुआ है। समालोचकों के मत में मार्ग-कविता पर यदि आर्य-संस्कृति का प्रभाव अधिक है तो देशी कविता पर द्राविड़ी सभ्यता की अमिट छाप है।

दूसरे शब्दों में हम यह कह सकते हैं कि मार्ग-कविता का विकास संस्कृत के चूड़ान्त पण्डितों के द्वारा हुआ जब कि देशी कविता का विकास जनता के हृदय की कोमलता तथा उनके सीधे-सादे भावों के द्वारा हुआ। जब से तेलुगु-साहित्य के विकास में पूर्ववर्ती बौद्ध तथा जैन-धर्मों का प्रभाव घटकर

वैदिक धर्म का प्रचार होने लगा तब से देशी परम्परा की साहित्यिक धाराएँ मन्द सी पड़ गईं। यद्यपि राज-दरबारों में देशी परम्परा के लेखकों का आदर-सत्कार नहीं होता था तथापि यह अपनी सहज कोमलता, भावों की सुकुमारता तथा भाषा की मिठास के कारण समय के साथ-साथ विकसित होती गई है। वास्तव में जैसी वह पहले जन-साधारण का कण्ठ-हार थी, वैसी आज भी है।

पहली परम्परा अर्थात् मार्ग-परम्परा के अन्तर्गत पुराण-साहित्य, प्रबन्ध-साहित्य और नाटक-साहित्य (कुछ अंश तक) आ जाते हैं। देशी साहित्य की परम्परा के अन्तर्गत द्विपद-साहित्य (जो अधिकांश में शैव-धर्मावलंबी है), उदाहरण-साहित्य (जो अपने रचना-तन्त्र की विशेषता रखता है), पद-साहित्य (जो भक्तिपूर्ण और ओजपूर्ण है), जनपद-साहित्य (जिसमें यक्ष-गान भी सम्मिलित हैं) तथा शतक-साहित्य आ जाते हैं। निम्न पंक्तियों में हम इन विविध साहित्यिक गतिविधियों का क्रमबद्ध अवलोकन प्रस्तुत कर रहे हैं।

पुराण-साहित्य

आरम्भ में तेलुगु-साहित्य का अवतरण पुराणों के अनुवाद के रूप में ही हुआ। नन्नय्य भट्ट-कृत 'महाभारत' के अनुवाद से इसका सूत्रपात हुआ है। परन्तु हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि तेलुगु के आरम्भिक कवियों में से किसी ने 'अनुवाद अनुवाद के लिए' ही नहीं किया, प्रत्युत उन्होंने समय-समय पर अपनी मौलिक सूझ से भी काम लिया। पुराण-साहित्य से प्रबन्ध-साहित्य तक एक क्रमबद्ध विकास देखा जा सकता है। उत्तरार्ध की रचनाओं में काव्य-कला का चमत्कार अधिक दिखाई देता है। उस समय के कवि केवल पुराणों के अनुवादों से ही सन्तुष्ट न रहकर संस्कृत के काव्य-ग्रन्थों का भी अनुवाद करने लगे थे। ऐसे अनुवादों में 'शृङ्गार नैषध' अत्यन्त उल्लेखनीय है।

तेलुगु का 'प्रबन्ध-साहित्य' अत्यन्त समुज्ज्वल और स्वर्णिम है।

इसका कारण यह है कि तब तक देश की जनता अपना जीवन अत्यन्त सुख-सुविधा और सन्तोष पूर्वक बिताती थी। कृष्णदेव रायलु तथा उनके वंशजों का शासन-काल सुख और शान्ति से परिपूर्ण था; फलत: अच्छे-से-अच्छे प्रबन्ध-काव्यों की सर्जना हुई, जिनमें 'मनुचरित्रमु', 'पारिजातापहरणमु', 'वसुचरित्रमु', 'कलापूर्णोदमु' और 'पांडुरंगमाहात्म्यमु' अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। तेलुगु-प्रबन्धों की विशिष्टता इसमें है कि इनमें संस्कृत-रीति-ग्रन्थों के लक्षणों का अंधानुकरण न होकर यत्र-तत्र कवियों की मौलिक उद्भावना का परिचय भी मिलता है।

नाटक-साहित्य

नाटक-साहित्य की सर्जना आधुनिक काल से ही प्रारम्भ हुई। पहले तो संस्कृत-नाटकों की देखा-देखी तेलुगु में काव्यों की रचना हुई थी। 'शृङ्गार शाकुन्तलमु' और 'प्रबोधचंद्रोदयमु' इसी प्रकार की रचनाएँ हैं। आधुनिक अर्थ में नाटक-रचना का आरम्भ श्री वीरेशलिंगम् पंतुलु के 'अभिज्ञान शाकुन्तलम्' के अनुवाद से हुआ है। उनकी देखा-देखी अन्य लेखकों ने भी संस्कृत-नाटकों का अनुवाद प्रस्तुत किया। परन्तु पश्चिमी भावनाओं से प्रभावित और प्रेरित होकर प्रथम दुःखांत नाटक 'विषाद सारंगधर' का प्रणयन श्री कृष्णमाचार्यजी ने किया। आधुनिक काल में युवक साहित्यकारों पर विदेशी साहित्य का प्रभाव और भी स्पष्ट लक्षित होता है। सामाजिक समस्याओं और ऐतिहासिक घटनाओं को लेकर इनमें से कई-एक एकांकी नाटकों की रचना कर रहे हैं। ऐसे कलाकारों में श्री पि० वि० राजमन्नार (मद्रास हाई-कोर्ट के चीफ़ जस्टिस), मल्लादि अवधानी, श्री विश्वनाथ कविराजु, और नार्ल वेंकटेश्वर राव अत्यंत उल्लेखनीय हैं। राजमन्नारजी की 'श्वेतनागु', कविराजु की 'दोंगाटकमु' और नार्लवेंकटेश्वरराव की 'कोतगड्डु' अत्यन्त उल्लेखनीय रचनाएँ हैं। आजकल 'रेडियो' द्वारा भी अनेक नाटिकाओं का प्रसार हो रहा है। इनमें कवि-सम्राट् सत्यनारायणजी की 'काव्य-हरिश्चन्द्रुडु' और 'वेदहरिश्चन्द्रुडु' अत्यंत महत्त्वपूर्ण कृतियाँ हैं।

नाटकों के रचना-तंत्र में भी क्रमशः परिवर्तन पाया जाता है। जहाँ आरंभिक नाटकों में पौराणिक वस्तु तथा पद्यों का बहुत प्रयोग किया जाता था, वहाँ आजकल के नाटक तथा नाटिकाओं में सामाजिक एवं ऐतिहासिक वस्तु तथा गीतों का प्रयोग किया जा रहा है। तेलुगु-नाटकों के विकास में कुशल अभिनेताओं का भी सम्मानपूर्ण स्थान है, जिनमें श्री हरिप्रसादराव, स्थानं नरसिंहराव, श्री डि० वि० सुब्बाराव, कपिलवादि रामनाथ शास्त्री, माधवपेद्दि वेंकटरामय्य और बल्लारि राघवाचार्युलु अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। बल्लारि राघवाचार्यजी के अभिनयन पर तो स्वयं श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर भी मुग्ध हुए थे। सारांश यह है कि तेलुगु में नाटक-रचना के साथ-साथ रंगमंच का भी अद्भुत विकास हुआ। उन दिनों कलकत्ता तथा रंगून आदि सुदूरवर्ती प्रांतों में भी तेलुगु के नाटक खेले जाते थे। तेलुगु के नाटक-साहित्य में 'कन्या शुल्कम्' का एक विशिष्ट स्थान है। इसके रचयिता श्री गुरुजाड अप्पाराव पंतुलु थे। इस नाटक की विशेषता द्विमुखी है। इसमें हास्य-रस-प्रधान 'व्यावहारिक शैली' का प्राचुर्य था। इस प्रकार अप्पाराव पंतुलुजी तेलुगु के प्रथम सामाजिक एवं हास्य-नाटककार सिद्ध होते हैं।

देशी परम्परा : लोक-साहित्य

तेलुगु-साहित्य में 'यक्ष-गानों' का स्थान बड़े महत्त्व का है। प्रारम्भ में यक्ष-गानों में संगीत और नाट्य दोनों की प्रधानता थी, किन्तु धीरे-धीरे इनमें संगीत का महत्त्व भी बढ़ता गया। आंध्र-प्रदेश में 'कुरवलु' नामक एक जंगली जाति रहती है। ये लोग बहुत नृत्य-प्रिय होते हैं। इन लोगों में 'आंजि' नामक एक नृत्य प्रचलित है, जिसमें ये अंग-विन्यास एवं अंग-विक्षेप करते हुए नाचते हैं। 'कुरवंजियों' का प्रदर्शन आज भी इन जातियों में प्रचलित है। इनमें से कुछ लोग नगरों के जीवन के संसर्ग में आए और नगरों में ही बस गए। धीरे-धीरे वे नगरों में नृत्य आदि का प्रदर्शन करके जीविका चलाने लगे। उन्हें 'जक्कुलु' नाम से पुकारा जाता था। इन 'यक्ष-गानों' में प्रेम के साथ-साथ हास्य का पुट भी पाया जाता है। संस्कृत-नाटकों

के विदूषकों के स्थान पर इन नाटकों में 'कोणंगि' रहता है। रचना में देशी छंदों की विविधता है, जैसे 'एललु', 'जोललु', 'कंदार्थमुलु', 'तुम्मेदपदमुलु' आदि। शिष्ट साहित्य में इन्हींका परिवर्तित रूप 'वीथी' है। लोक-साहित्य के इस अंग की प्राचीन कृतियों में रुद्रकवि का 'सुग्रीव-विजयमु' त्यागराजु का 'नौकाचरित्रमु' और रंगाजम्म का 'मन्नारुविलासमु' मुख्य हैं। लोक-साहित्य के अंतर्गत यक्ष-गानों के अतिरिक्त कई अन्य गीति-रचनाएँ भी पाई जाती हैं। कथात्मक गीत-साहित्य वीर और करुण रस-प्रधान होता है।

तेलुगु के प्राचीन साहित्य में वीर-गाथाएँ कम हैं। इस क्षति की पूर्ति अंशतः लोक-साहित्य की इन रचनाओं से हो जाती है। ऐसी रचनाओं में 'बोब्बिलि-कथा', 'देसिंगु राजु कथा' और 'सर्वायि पापडि कथा' मुख्य हैं। करुणापूर्ण गीति-काव्यों में 'बालनागम्मा' की कथा अत्यन्त प्रसिद्ध है। जनपद-साहित्य अथवा लोक-साहित्य का आधुनिक रूप 'बुर्रकथलु' है। आज साहित्य के इस प्रयोग से विभिन्न राजनीतिक दल लाभ उठा रहे हैं। शुद्ध साहित्यिक दृष्टि से भी इसका प्रयोग किया जा रहा है। इनमें श्री शंकरंबाडि सुन्दराचारी का 'बलिदान' अत्यन्त प्रसिद्ध है। इसमें लेखक ने गान्धीजी की हत्या पर लोक-साहित्य की गीतात्मक परिपाटी पर बड़ी ही करुणापूर्ण शैली में गीति-रचना की, जिसे पढ़ अथवा सुनकर आँखें गीली हो जाती हैं और हृदय दुःखित हो उठता है।

उदाहरण-साहित्य

उदाहरण-साहित्य का मौलिक रचना-तंत्र प्रशंसनीय है। यह एक छोटा-सा काव्य है, जिसमें छः कारक-प्रत्ययों का तथा सम्बोधन और सम्बन्ध-सूचक अव्ययों का प्रयोग छंदों में होता है। इसकी विशेषता यह है कि एक छंद में एक ही प्रकार के प्रत्यय का प्रयोग चारों चरणों में किया जाता है। संस्कृत-छंदों की अपेक्षा देशी छन्द अधिक प्रयुक्त होते हैं। उदाहरण-साहित्य का रचना-क्रम साधारणतया इस प्रकार है—वृत्त, कलिका तथा उत्कलिका। वृत्त की रचना जिस विभक्ति-प्रत्यय से की जाती है उसी

विभक्ति-प्रत्यय के साथ कलिका एवं उत्कलिका (देशी छंद) रची जाती हैं! जब इस प्रकार के क्रम से आठ विभक्तियों में छन्द लिखे जाते हैं तब अन्त में एक छन्द और जोड़ा जाता है, जिसमें सभी विभक्ति-प्रत्ययों का समावेश होता है। स्थूल दृष्टि से देखने पर संभवतः यह प्रश्न उठता है कि ऐसी रचना से लेखक का तात्पर्य क्या है? परन्तु बात ऐसी नहीं है। व्याकरण-शास्त्र के अनुसार सब कारकों का अन्वय क्रिया में होना चाहिए। विभक्ति-प्रत्यय इन्हों कारकों में प्रयुक्त होते हैं। जब हम इस अपार सृष्टि के निर्माता भगवान् से एक-एक छन्द में एक-एक प्रत्यय से प्रार्थना करें तो अर्थ यह निकलता है कि हम भगवान् के दर्शन सर्वक्रिया-स्थानभूत के रूप में कर रहे हैं। ऐसी दशा में सारा उदाहरण-साहित्य भगवान् की सेवा के रूप में हम ले सकते हैं। अतएव उदाहरण-कालों में अधिकांश शिवपरक और विष्णुपरक हैं, मानवपरक कम। इनमें राविपाटि तिप्पन्न का 'त्रिपुरांतकोदाहरणमु' अत्यंत प्रसिद्ध है। आधुनिक उदाहरण-काव्यों में मधुनापंतुल सत्यनारायण का 'वीरेशलिंगोदाहरणमु', विश्वनाथ सत्यनारायण का 'गोपालोदाहरणमु' और कोदंडरामय्य का 'अन्नमाचार्योदाहरणमु' उल्लेखनीय हैं।

शतक-साहित्य

रचना-तन्त्र (Technique) के आधार पर हम शतक-साहित्य को भी देशी परम्परा को अन्तर्गत लेते हैं। इसमें मौलिक विशेषताएँ पाई जाती हैं। इन शतकों के (१) आत्म-परक और (२) बाह्य-परक दो विभाग किये जा सकते हैं। आत्म-परक शतक भक्ति के शतक भी कहे जा सकते हैं। इनमें कवि पुलकित तन और मन से अपने इष्टदेव के सामने अभिव्यक्तिपूर्ण वाणी से आत्म निवेदन करने लगता है। अपनी तुच्छता का अनुभव तथा परमात्मा की महान् विभूति का दर्शन करके वह गद्‌गद् हो जाता है। बाह्य वस्तु परक शतकों में कवि तटस्थ समालोचक की भाँति सामाजिक भलाइयों या बुराइयों की छान-बीन करके ग्लानि प्रकट करता

है। कुछ समयों में कवि उचित स्वतन्त्रता के साथ भगवान् के सम्बन्ध में भी व्यंग्य के बाण छोड़ते हैं। इस प्रकार की रचनाओं में कवि की निस्सहायता के साथ-साथ लघुहास्य का सम्मिश्रण भी रहता है। शतक में (चाहे वह किसी प्रकार का न हो) इष्टदेव का सम्बोधन प्रत्येक पद्य के अन्त में दिखाई देता है, यह बात संस्कृत अथवा हिन्दी में लक्षित नहीं होती। शतकों में किसी एक ही छन्द अथवा सदृश छन्द का प्रयोग होता है। कारण यह है कि कवि अपने इष्टदेव के सम्बोधन के रूप में वह शब्द अथवा शब्दों का समूह रख लेता है, जो किसी एक प्रकार के छन्द में ही प्रयुक्त हो सकता है। शतकों में पद्यों की संख्या प्रायः १०८ होती है। इस संख्या के पीछे निश्चय ही एक धार्मिक भावना काम कर रही है। साधारणतया इष्टदेव की उपासना में अष्टोत्तरशत नामावली का जप हुआ करता है। इसी परिपाटी के अनुसार शतकों में पद्यों की संख्या भी प्रायः नियत है।

हम देखते हैं कि तेलुगु-साहित्य के इतिहास में प्राचीन काल से भी शतक-साहित्य का अक्षय भण्डार है। जो ग्रामीण जनता काव्य-पुराण आदि नहीं पढ़ सकती वह इस सरल शतक-साहित्य के अध्ययन अथवा श्रवण से ही जीवन के अमूल्य सन्देश और ऊँचे आदर्शों को अपना सकती है। इस प्रकार शतक-साहित्य शिक्षित समाज और ग्रामीण जनता में सांस्कृतिक सामञ्जस्य बनाये रखने वाला एक अद्भुत साहित्यिक प्रयोग है। पालकुरिकि सोमनाथ ने आरम्भिक काल में 'वृषाधिप शतक' के द्वारा इसका सूत्रपात किया। आधुनिक शतककारों में श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी, श्री बुच्चि-सुन्दर रामय्य जी तथा इन पंक्तियों का लेखक उल्लेखनीय हैं। इन्होंने क्रमशः श्री 'विश्वेश्वर शतकमु', 'मृत्युञ्जय शतकमु' और 'सर्वेश्वरी शतकमु' लिखे।

पद-साहित्य

तेलुगु-साहित्य के इतिहास में पद-साहित्य का आरम्भ अभी अज्ञात

अवस्था में है। जहाँ तक सामग्री उपलब्ध है अन्नमाचार्य जी ही पद-साहित्य के प्रथम कवि ठहरते हैं। अन्नमाचार्य ने 'स्वांतः सुखाय' पदों की रचना की। पद-साहित्य का अच्छा विकास पुनः नायक राजाओं के काल में हुआ। इस काल के सबसे प्रमुख पदकर्ता क्षेत्रय्य थे। इनके सारे पद शृङ्गार-भक्ति अथवा मधुर-भक्ति के उज्ज्वल उदाहरण हैं। इनमें नायिका-भेद के स्वच्छ एवं उज्ज्वल उदाहरण मिलते हैं। पद-साहित्य प्रधानतः गेय होता है। अतः पद-कवि में एक साथ साहित्य एवं संगीत का उत्तम ज्ञान अपेक्षित है। क्षेत्रय्य के पदों की विशिष्टता यह है कि उनमें संगीत और साहित्य की अतुल सम्पदा तो है ही, साथ ही नाट्य के लिए भी ये पद अत्यन्त उपयुक्त हैं। पदों की भाषा में व्याकरण के कड़े नियमों का पालन नहीं हो सकता। इससे पद-साहित्य भी लोक-साहित्य के अन्तर्गत आयगा। वास्तव में पदों का प्रचलन जन-साधारण में ही अधिक होता है।

क्षेत्रय्य की भाषा अन्नमय्य की भाषा से अधिक मँजी हुई है। भाषा की परम सुन्दरता त्यागराजु के पद-साहित्य में प्राप्त है। कर्णाटक संगीत को त्याग-राजु ने अपने पदों के द्वारा एक परिष्कृत तथा सुन्दर रूपरेखा दी। आज इनके पद दाक्षिणात्य संगीत रूपी सुन्दर प्रासाद के प्रधान स्तम्भ हैं। कहते हैं कि वाल्मीकि की देखा-देखी इन्होंने चौबीस हजार पद गाए। परन्तु आजकल उनमें से केवल साढ़े छः सौ पद ही मिलते हैं। इन पदों की भाषा, सुकुमार भावों की सुवासना से सुरभित है। पोतन्न ने पद्य-साहित्य में भक्ति के मधुर प्रवाह को बहाया तो त्यागराजु ने संगीत-प्रधान पद-साहित्य में। दोनों की मनः-प्रवृत्ति में थोड़ा भी अन्तर नहीं है। दोनों ने नरपतियों के आश्रय को सच्चे भक्त हृदय से ठुकरा दिया। क्षेत्रय्य की बात सर्वथा दूसरी थी। उनकी भक्ति मधुर भाव की थी जब कि त्यागराजु दास्य-भक्ति के थे। फलतः त्याग-राजु के पदों में विनयशीलता और इष्टदेव के वैभव का सुषमापूर्ण वर्णन प्राप्त है। अन्नमय्य, क्षेत्रय्य और त्यागराजु तेलुगु के पद-साहित्य की बृहत्त्रयी हैं। यदि हम हृदय की भक्ति-विह्वलता और भाषा की चारुता पर ध्यान दें तो त्यागराजु को सर्वोपरि स्थान दे सकते हैं।

ऐसे मधुर पद-साहित्य का बिगड़ा हुआ रूप हमें सारंगपाणि के पदों में प्राप्त होता है। इनमें तुच्छ शृङ्गार का नग्न वर्णन हुआ है। अन्य उल्लेखनीय पदकार भद्राचल रामदासु और निट्ठल 'प्रकाशदासु' हैं। वास्तव में भक्ति और पद-साहित्य में चोली-दामन का साथ दृष्टिगोचर होता है। यह बात दूसरी देशी भाषाओं के साहित्य के अवलोकन से भी प्रमाणित होती है।

सुब्रह्मण्य कवि के लिखे हुए 'अध्यात्म संकीर्तनलु' भी पद-साहित्य में प्रमुख स्थान रखते हैं। इनका प्रचार पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक है। इन पदों की विशेषता इस बात में है कि सारी 'रामायण' की कथा पदों में गाई गई है। कवि का यह काव्य संस्कृत की 'अध्यात्म रामायण' का गेयात्मक अनुवाद है।

आधुनिक पदकारों में विजयवाड़ा में रहने वाले बालमुरली कृष्ण का नाम अत्यन्त उल्लेखनीय है। उन युवक कलाकार में गान-कुशलता के साथ-साथ पद-रचना की प्रशंसनीय क्षमता भी है।

द्विपद-साहित्य

देशी परम्परा में द्विपद-साहित्य का सर्वोन्नत स्थान है। प्रधानतया, आरम्भिक काल में शैव धर्मावलम्बी कवियों ने द्विपदा छन्द में अपनी-अपनी रचनाएँ की हैं। तेलुगु-प्रान्त में शैव धर्म के १. आराध्य और २. वीर-शैव नामक दो प्रमुख वर्ग हैं। आराध्य शैवधर्मी होते हुए भी वैदिक धर्म के विरुद्ध नहीं हैं। ये पहले लिंग-धारण भी नहीं करते थे और ब्राह्मण-धर्म के पक्षपाती भी थे। शैवधर्म के आरम्भिक प्रवर्त्तकों में १. श्रीपति, २. मंचेन और ३. पंडिताराध्य अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। इनमें से पंडिताराध्य ने 'शिवतत्त्वसार' नामक काव्य की रचना की है। वीर-शैव धर्म के प्रवर्त्तक राजा बिज्जल के मन्त्री श्री बसवेश्वर थे। वीर-शैव 'लिंग-धारण' करते हैं। ये जाति-पाति का विचार नहीं रखते। इनका धार्मिक सिद्धान्त निम्न प्रकार है :

एक पीठं जगत्सर्वमेकमाकाशमालयम्।
एक तोयं सदा पीत्वा जाति भेदं न कारयेत् ॥

अर्थात् सारा संसार एक पीठ है। आकाश एक आलय है। एक ही पानी पीकर जाति-भेद रखना उचित नहीं है। अद्वैत मत का अनुकरण करते हुए भी यह शिव की उपासना पर ध्यान देता है।

देशी परम्परा की इस प्रबल तथा प्रमुख शाखा में पंडिताराध्य (केवल शैव-कवि) और पालकुरिसि सोमनाथ (वीरशैव-कवि) अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। नन्नेचोड भी शैव थे, परन्तु रचना-तन्त्र के आधार पर इनकी कविता देशी परम्परा में अन्तर्भूत नहीं हो सकती। निस्सन्देह पालकुरिसि सोमनाथ देशी परम्परा के आधार-स्तम्भ माने जा सकते हैं। इन्होंने अपनी रचनाओं ('वसवपुराणमु' आदि) के द्वारा एक ओर शैव-धर्म का प्रचार किया तो दूसरी ओर जन-साधारण में साहित्यिक अभिरुचि उत्पन्न की है, क्योंकि मार्ग-कविता 'सर्व-सामान्य' नहीं थी।

इस प्रसंग में हमें एक मुख्य विषय पर ध्यान देना चाहिए। देशी परम्परा पर मार्ग-कविता और मार्ग-कविता पर देशी परम्परा का प्रभाव तेलुगु-साहित्य में परिलक्षित है। फलतः जैसे द्विपद-साहित्य में (जो मुख्यतः शैव धर्म का साहित्य है) आगे चलकर वैष्णव धर्म की पुस्तकें ('रामायण', 'परमयोगिविलासमु' आदि) निकलीं वैसे ही मार्ग-कविता में 'प्रभुलिंग लीललु' 'पद्य—वसवपुराण' आदि प्रबन्ध निकले, जिनमें शिव-लीलाओं का काव्यात्मक वर्णन हुआ है। उदाहरण-साहित्य में इन दोनों परम्पराओं का सम्मिश्रण एक साथ दृष्टिगत होता है।

ऐतिहासिक काव्य के प्रणेताओं में कासे सर्वप्प, कुमार धूर्जटि और अदुगुल वेंकय्य मुख्य हैं। आधुनिक काल में इस परम्परा का विकास करने वालों में १. श्री गडियारं शेष शास्त्री, २. दुर्भाक राजशेखर शतावधानी तथा ३. श्री विश्वनाथ सत्यनारायणजी अग्रगण्य हैं। शेष शास्त्री जी ने अपनी ओजपूर्ण लेखनी से हिन्दुओं के प्राणों के नायक श्री वीर शिवाजी के जीवन-वृत्त को अपनी कृति 'शिव-भारतमु' में वर्णित किया है। इसमें

आपने कविता की स्वच्छ दुग्ध-धारा बहाई है। शास्त्रीजी की यह कृति आधुनिक महाकाव्यों में से एक है।

राजशेखर शतावधानी ने 'राणा प्रताप' पर एक महा प्रबन्ध रच डाला है। लोगों में इस कृति का भी यथेष्ट आदर है। 'शिव भारत' और 'राणा प्रताप' दोनों महाकाव्य गुण में ही नहीं, अपितु आकार में भी बड़े हैं। कविसम्राट् श्री विश्वनाथ सत्यनारायण जी ने 'झाँसी राणी' नामक ऐतिहासिक काव्य लिखा। आकार में लघु होने पर भी यह काव्य काव्य-गुणों में तथा प्रभावोत्पादक शक्ति में बड़ा ही उज्ज्वल और महत्त्वपूर्ण है। कवि ने इसमें यह सिद्ध कर दिया है कि ऐतिहासिक काव्यों में इतिहास की बहुत ही कम मात्रा हो सकती है। पहले आश्वास में शरत्कालीन मेघों के वर्णन द्वारा अंग्रेज अफ़सरों की करतूतों का जो व्यंग्यपूर्ण और मार्मिक वर्णन हुआ है, वह अत्यन्त स्तुत्य है। इस प्रकार प्रकृति के वर्णन के साथ-साथ व्यंग्य रूप काव्यगत वस्तु का निर्देश करना, एक कुशल कवि का ही काम हो सकता है।

हालावाद

आधुनिक काल में सूफी कवि 'उमर खैयाम' की देखा-देखी कविता लिखने वाले इने-गिने कवि तेलुगु में भी हो चुके हैं। उन सबमें दूब्बूरिरामि रेड्डि प्रथम स्थान रखते हैं। इन्होंने 'पानशाला' में खैयाम की रूबाइयों का अनुवाद करके इस परम्परा का सूत्रपात किया है। इनकी देखा-देखी श्री रायप्रोलु सुब्बाराव और माधमपेद्दि बुच्चि सुन्दर राम शास्त्री ने भी कुछ कृतियाँ लिखीं। रेड्डिजी की विशेषता इस बात में है कि इन्होंने मूल फ़ारसी से इनका अनुवाद किया है। श्री आदि भक्त नारायणदास ने भी इनका अनुवाद एक साथ ठेठ तेलुगु और संस्कृत में किया है। हाँ एक प्रकार से आजकल कविता की यह धारा बिलकुल अवरुद्ध हो गई है।

प्रान्तीयतावाद की कविता

जब अंग्रेजी शासन के व्यामोह से आंध्र अपने निजत्व को खोकर सोने लगे

तब कवियों ने इन अलस-जीवियों को बार-बार अपनी कविता द्वारा आंध्रों के पुरातन वैभव का वर्णन सुनाकर जगाया। आंध्रों में जब कुछ स्पन्दन हो चला तब वे अपने अलग प्रदेश के लिए भी आन्दोलन चलाने लगे। परन्तु यहाँ यह याद रखना चाहिए कि आंध्रों का यह उद्यम किसी समय की भारतीयता में या स्वराज्य के उद्यम में बाधा नहीं डाल सका। इस विचार-धारा को पुष्ट करने वाले कवियों में श्री रायप्रोलु सुब्बाराव, श्री विश्वनाथ सत्यनारायण तथा तुम्मल सीता राममूर्ति चौधरी मुख्य हैं। इस प्रसंग में सुब्बाराव जी की 'तेलुगु तोट' और 'जडकुच्चुलु', सत्यनारायण जी की 'आंध्र पौरुषमु' और 'आंध्र-प्रशस्ति' तथा चौधरी जी की 'राष्ट्र-गानमु' अत्यन्त उल्लेखनीय कृतियाँ हैं। इस विचार-धारा के युवक कवियों में श्री पैंडिपाटि सुब्बराम शास्त्री तथा सुन्दराचारी गणयमान्य लेखक हैं। इन दोनों के गीत बहुत प्रसिद्ध हैं।

तेलुगु पर तमिल-साहित्य का प्रभाव

काव्य-काल के द्वितीय उत्थान से लेकर तेलुगु पर तमिल-साहित्य का प्रभाव भी परिलक्षित होता है। स्वयं श्रीकृष्ण देवरायलु ने 'आमुक्त माल्यदा' लिखकर वैष्णव धर्म तथा तमिल-भक्तिन की जीवन-कथा का प्रचार किया। उनके अनन्तर ताल्लपाक-कवियों की कृतियों में वैष्णव धर्म और तमिल-साहित्य की छाप अधिक दृष्टिगोचर होती है। फलतः चिन्नन्न की लिखी हुई 'परमयोगि-विलासमु' में बारह आल्वारों के भक्तिमय जीवन की कथा अभिवर्णित है। वैसे ही परवर्ती कृतियों में 'विप्रनारायण चरित' मुख्य है। आधुनिक कवियों में से श्री वेटूरिप्रभाकर शास्त्री ने अन्दाल की तमिल-कृति 'तिरुपावै' का गेयानुवाद प्रस्तुत किया है। श्री पूतलपट्टु श्री रामुलु रेड्डि ने तमिल-साहित्य के महाकाव्य 'कम्ब रामायण' का पद्यानुवाद किया है। इस कृति पर श्री रेड्डि जी का सम्मान तमिल-प्रदेश में हुआ है। किन्तु फिर भी तमिल और तेलुगु में आदान-प्रदान का मार्ग अभी अपेक्षा-कृत प्रशस्त नहीं हुआ है।

समालोचना तथा निबन्ध

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि समालोचना तथा निबन्ध आधुनिक काल की देन हैं। आधुनिक समालोचना का सूत्रपात श्री कट्टमंचि रामलिंगा-रेड्डि ने अपनी कृति 'कवित्व-तत्त्वविचारमु' के द्वारा किया है। इसमें रेड्डि ने तेलुगु-साहित्य के महाग्रन्थ 'महाभारत' तथा 'कलापूर्णोदयमु' की समालोचना करने के साथ-साथ कविता के तत्त्व, प्रयोजन और लक्ष्य आदि कविता के सिद्धान्तिक पक्ष पर भी अच्छा प्रकाश डाला है। इनकी रचना अंग्रेजी साहित्यिक समालोचनाओं से प्रभावित थी। तेलुगु-साहित्य के दूसरे समालोचकों में सर्वश्री राल्लपल्लि, अनन्त कृष्ण शर्मा, नडकुदुटि वीरराजु पन्तुलु, श्री विश्वनाथ सत्यनारयण, वेटूरि प्रभाकर शास्त्री उल्लेखनीय हैं। इनकी समालोचना प्रायः परम्परा का पालन करते हुए चलती है। युवक समालोचकों में श्री पोट्लपल्लि सीताराम राव, श्री पिल्लमर्रि हनुमन्तराव तथा इन्द्रकण्टि हनुमच्छास्त्री गणनीय हैं। अनन्त कृष्ण शर्मा की 'वेमन्न' और प्रभाकर शास्त्री जी की 'शृङ्गार श्रीनाथमु' अत्यन्त उल्लेखनीय पुस्तकें हैं।

निबन्ध-लेखकों में श्री अनन्त कृष्ण शर्मा तथा श्री मुट्नूरि कृष्णाराव जी का स्थान सर्वोपरि है। शर्मा जी की कृतियाँ 'सारस्वतोपन्यासमुलु' तथा 'नाटकोपन्यासमुलु' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। श्री कृष्णाराव जी का 'समीक्षा' नामक ग्रन्थ बड़ा ही उपादेय है। तेलुगु-गद्य का निखरा हुआ स्वरूप हम इनमें पाते हैं। युवक निबन्धकारों में श्री पुट्टपर्ति नारायणाचार्युलु तथा श्री हनुमन्तराव जी ने सम्मानपूर्ण स्थान बना लिया है। क्रमशः इनकी 'व्यास सम्पुटि', 'प्रबन्ध-नायिकलु' तथा 'साहित्य सम्पदा' आदि कृतियाँ पर्याप्त प्रसिद्ध हैं।

उपन्यास व कहानी-कला

अनूदित उपन्यासों के अतिरिक्त उपन्यास-कला का मौलिक विकास तेलुगु-साहित्य में भली भाँति हुआ है। इन मौलिक उपन्यासकारों में सर्व-श्री विश्वनाथ सत्यनारायण, अडिवि बापिराजु, उन्नव लक्ष्मीनारायण तथा

नोरिनरसिंह शास्त्री अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। श्री सत्यनारायण अपने बृहद् उपन्यास 'वेयिपडगलु' के लिए आन्ध्र-विश्वविद्यालय के द्वारा सम्मानित हुए। इस उपन्यास की विशेषता इसमें है कि समूचे आन्ध्र-समाज के जीवन का जीता-जागता चित्रण इसमें हुआ है। इसके अतिरिक्त इन्होंने 'वीरवल्लडु', 'बद्दन्नसेनानी', 'स्वर्गीनिकि निच्चेन', 'चेल्लिमलिकट्ट', 'एक वीरा' आदि कई उपन्यास लिखे, जो अपने रचना-पाटव के लिए परम प्रसिद्ध हैं। जहाँ अन्य लेखकों के उपन्यास सामाजिक समस्याओं का विश्लेषण करने में तत्पर दिखाई देते हैं, वहाँ श्री नोरिनरसिंह शास्त्री जी के उपन्यास आन्ध्रों के प्राचीन इतिहास के भग्नावशेषों के आधार पर सुन्दर भाव-सौध खड़ा करते हैं। इनमें 'नारायण भट्ट' तथा 'रुद्रम देवी' अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। लक्ष्मीनारायण जी की 'मालापल्लि' में गान्धीवाद का औपन्यासिक विश्लेषण अद्भुत रूप से हुआ है। ग्रामीण हरिजनों की सचाई, ईमानदारी तथा प्रवर्त्तन-पटुता का प्रदर्शन सर्वथा अनूठे ढंग से हुआ है। इनकी भाषा सजीव, लचीली तथा मनमोहक है।

युवक उपन्यासकारों में श्रीमती मल्लादि वसुन्धरा का सम्मानपूर्ण स्थान है। वसुन्धरा अभी हाल में ही आन्ध्र-विश्वविद्यालय के द्वारा अपने उपन्यास 'तंजूर-पतन' पर पुरस्कृत भी हुई हैं। इनका दूसरा उपन्यास 'दूरपुकोंडलु' भी पर्याप्त प्रसिद्ध है। 'तंजूर-पतन' में दक्षिण में आन्ध्र राजाओं के समय के सामाजिक जीवन का वर्णन ऐतिहासिक तथा काव्यात्मक ढंग पर हुआ है।

कहानीकारों में श्री नरसिंह राव, चिन्ता दीक्षितुलु, चलं, कमिडिपाटि कामेश्वर राव, कोडवटिगंटि कुटुम्ब राव, पालगुम्मि पद्मराजु, मल्लादि रामकृष्ण शास्त्री, श्रीपाद सुब्रह्मण्य शास्त्री तथा गोपीचन्द का प्रमुख स्थान है। नरसिंह राव तथा कामेश्वर राव की कहानियों में हमें अनुभव-योग्य हास्य मिलता है, तो चलं की कहानियों में यौन-समस्याओं का विस्तृत विश्लेषण। सुब्रह्मण्य शास्त्री की कथाओं में तेनुगुपन की मिठास, रामकृष्ण शास्त्री की कहानियों में कलात्मक अभिव्यक्ति की कुशलता, गोपीचन्द में

राजनीतिक समस्याएँ और पद्मराजु में गम्भीर विचारशीलता हम पाते हैं। सु० शास्त्री के कई कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। चलं की बृहत् कथाएँ 'मैदान' आदि अत्यन्त आकर्षक हैं। दीक्षितुलु की 'वटी रावु कथाएँ' एकदम नवीन और मौलिक है।

आधुनिक कहानीकारों में श्रीमती मालती चन्दूरु का विशिष्ट स्थान है। श्रीमती जी पारिवारिक एवं सामाजिक समस्याओं पर अधिकार पूर्वक लिखती हैं।

अनुवाद-कार्य

वर्तमान समय में अनुवाद-कार्य मुख्यतः संस्कृत से, अंग्रेजी से और बँगला तथा हिन्दी आदि अन्य भाषाओं से हो रहा है। श्री माधवराय शर्मा ने संस्कृत के लक्षण-ग्रन्थ (१) 'काव्य-प्रकाश', (२) 'रस गंगाधर', तथा (३) 'प्रतापरुद्र यशोभूषण' का अनुवाद तेलुगु में किया है। श्री तिरु बेंगलाचार्य जी ने 'ध्वन्यालोक' का सफल अनुवाद किया है। इस अनुवाद की विशेषता इसमें है कि उदाहरण रूप में तेलुगु के प्रसिद्ध कवियों की कृतियों में से पद्य दिये गए हैं, जिससे लक्षणों का समन्वय अच्छी तरह हो सके।

पापय्य शास्त्री 'करुण श्री' ने 'स्वप्नवासवदत्ता' का तथा बुलुसु वेंकटेश्वलु ने 'यज्ञफल' तथा 'वेणीसंहार' का अनुवाद किया। 'रत्न पांचालिका' और कोट सुन्दरराम शर्मा का 'प्रद्युम्नाभ्युदयमु' भी इसी परम्परा के हैं। श्री पंतुलु लक्ष्मीनारायण शास्त्री और चर्ल गणपतिशास्त्री जी उपनिषद्-वाङ्मय का अनुवाद तेलुगु में कर रहे हैं।

वर्तमान पत्र-पत्रिकाओं में धारावाहिक रूप में कई-एक अंग्रेजी उपन्यासों का अनुवाद हो रहा है। श्री काटूरि वेंकटेश्वरराव जी ने Black Tulip का अनुवाद किया है। श्री वेलूरि शिवराम शास्त्री जी ने Don Quixote का अनुवाद किया है। तेन्नेटि सूरि के Tale of two cities का अनुवाद भी उल्लेखनीय है। आजकल David Copperfield का अनु-

बाद 'आंध्रप्रभा' में निकल रहा है।

प्रादेशिक भाषाओं से अनुवाद करने वालों में श्री शिवशंकर शास्त्री और वेंकट पार्वतीश्वर कवुलु उल्लेखनीय हैं। इनके द्वारा बंकिमचन्द्र चटर्जी, रमेशचन्द्र दत्त आदि के बँगला के उपन्यासों के अनुवाद प्रकाशित हुए। सन् १९४० के बाद से तेलुगु में शरत्चन्द्र चटर्जी के उपन्यासों और कहानियों का अनुवाद एक बाढ़ की तरह आ गया है। शरत्-साहित्य के तीन मुख्य अनुवादक हुए हैं—(१) वेलूरि शिवराम शास्त्री, (२) चक्रपाणि तथा (३) बोंद्दन्नपाटि शिवराम कृष्ण।

वैसे तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर शरत् की अपेक्षा पहले तेलुगु जनता को परिचित थे, परन्तु इनकी कृतियों का अनुवाद-कार्य अभी-अभी चल रहा है। इस दिशा में स्वनामधन्य श्री बेजवाड गोपाल रेड्डि सफलता के साथ अग्रसर हो रहे हैं। इनकी 'मालिनी' और 'चित्रांगदा' आदि कृतियाँ पर्याप्त ख्याति पा चुकी हैं।

प्रेमचन्द की कहानियों का अनुवाद पत्र-पत्रिकाओं में आए दिन निकल रहा है। प्रेमचन्द की कुछ कथाओं के साथ इन पंक्तियों के लेखक ने श्री जैनेन्द्रकुमार की 'परख' का अनुवाद भी किया है। जब आदान-प्रदान का मार्ग और भी प्रशस्त हो जायगा तब राज-भाषा हिन्दी के द्वारा विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं की कृतियों का अनुवाद होने की बड़ी सम्भावना है।

अन्य साहित्यिक प्रवृत्तियाँ

वैज्ञानिक साहित्य—आजकल तेलुगु में वैज्ञानिक साहित्य का प्रकाशन भी हो रहा है। वैज्ञानिक साहित्य की सर्जना करने वाले लेखकों में सर्व श्री वसन्तराव वेंकटराव, हरि आदि शेषुवु तथा डि० नारायण राव अत्यन्त उल्लेखनीय हैं। अभी पिछले दिनों श्री वेंकटराव जी ने तेलुगु-भाषा-समिति की ओर से वैज्ञानिक कोष का सम्पादन भी किया है। नारायणराव जी की 'परमाणु गाथा' प्रसिद्ध है। हरि आदि शेषु भी अपनी कृतियों के लिए तेलुगु-भाषा-समिति द्वारा पुरस्कृत हुए। आजकल एक वैज्ञानिक मासिक 'आधुनिक विज्ञान' भी वाल्तेर से प्रकाशित हो रहा है। पाक-विज्ञान पर

श्रीमती चन्दूरु लिख रही हैं।

महिला-साहित्य—आधुनिक काल की कवयित्रियों में श्रीमती बरलक्ष्मम्मा श्रीमती लक्ष्मीकान्तम्मा तथा कांचनपल्लि कनकांबा अत्यन्त प्रसिद्ध हैं। कनकांबा की कृतियाँ 'हंस-विजयमु' तथा 'जीवमात्रा' पर्याप्त प्रसिद्ध हैं। इनकी रचनाओं पर दार्शनिक विचार-धारा का प्रभाव लक्षित होता है। लक्ष्मीकान्तम्मा की उनकी समालोचनात्मक कृति 'तेलुगु कवयित्रुलु' पर तेलुगु-भाषा-समिति द्वारा पुरस्कार प्रदान किया गया है।

ऐतिहासिक साहित्य—संस्कृत-साहित्य से इस विषय की तुलना करने पर कहना पड़ता है कि तेलुगु-कवियों में अति प्राचीन काल से इतिहास पर भी यथेष्ट ध्यान देने का रिवाज चला आ रहा है। तेलुगु में ऐसे कवि भी हुए हैं, जिनमें ऐतिहासिक व्यक्तियों की महत्त्वपूर्ण जीवन-कथाओं को लेकर काव्य बनाने की प्रवृत्ति प्रदर्शित होती है। यह कह देना आवश्यक है कि साधारणतया इन काव्यों के पात्र आदि ऐतिहासिक होते हैं, परन्तु वर्णित घटनाओं में सत्य का अंश शत-प्रतिशत नहीं हो सकता। इसका कारण यह है कि कवि काव्य-नायक के प्रति अधिक न्याय करने की दुर्दम लालसा में सम्भवतः उनकी वीरता आदि की प्रशंसा में और अन्य राजाओं पर प्राप्त विजयों के विषय में बढ़-चढ़कर वर्णन कर बैठता है। ऐसे अवसरों पर इतिहास का गला अवश्य कुछ घोंटा जाता है।

: ७ :

पत्र-पत्रिकाएँ और संस्थाएँ

पत्र-पत्रिकाएँ

तेलुगु की पहली प्रसिद्ध मासिक पत्रिका 'शारदा' थी। यह मछली बन्दर से पं० कौता श्रीरामशास्त्री जी के सम्पादकत्व में निकलती थी। उन दिनों तेलुगु के प्रसिद्ध साहित्यकार अपने लेखों से इसे अलंकृत करते थे। श्री रामशास्त्री जी स्वयं पण्डित थे। 'देशोद्धारक' काशीनाथ नागेश्वरराव जी के द्वारा 'भारती' का प्रकाशन सन् १६२४ में प्रारम्भ हुआ। आजकल भी 'भारती' की सभी मासिकों में सर्व श्रेष्ठ मान्यता है। श्री नागेश्वरराव जी तेलुगु-प्रदेश के केवल एक धनी कांग्रेसी नेता ही नहीं प्रत्युत तेलुगु-साहित्य के गति-विधान को आगे बढ़ाने वाले उदार-चेता महानुभाव थे। इनके कर कमलों द्वारा न जाने तेलुगु के कितने आधुनिक लेखकों को आर्थिक सहायता पहुँचती थी। इन्हींकी पत्रिका के द्वारा तेलुगु में कई लेखक प्रख्यात हो सके। आजकल श्री नागेश्वरराव जी के जामाता श्री शम्भुप्रसाद 'भारती' का प्रकाशन और संचालन सुचारु रूप से कर रहे हैं।

अन्य मासिक पत्रिकाओं में 'सखी', 'उषा', 'वीणा', 'उदयिनी' और 'जयन्ती' आदि उल्लेखनीय हैं। ये सब अल्पायु वाली रह गई थीं। कहानियाँ, उपन्यास तथा एकांकी आदि आधुनिक साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियों

के विकास के लिए ये पत्रिकाएँ उत्तम साधन रहीं।

'सखी' के सम्पादक श्री शिवशंकर शास्त्री, 'उषा' और 'वीणा' के सम्पादक पाटिबंड माधव शर्मा तथा 'जयन्ती' के सम्पादक श्री विश्वनाथ सत्यनारायण केवल सम्पादक ही नहीं अपितु तेलुगु के आधुनिक साहित्य के अग्रदूत हैं। 'गृहलक्ष्मी' और 'हिन्दू सुन्दरी' महिलाओं की पत्रिकाएँ हैं। 'हिन्दू सुन्दरी' बन्द हो गई। 'आन्ध्र महिला' भी स्त्रियों की मासिक पत्रिका है। इसका संचालन श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख के द्वारा हुआ। इन पत्रिकाओं में केवल महिलाओं को लाभ पहुँचाने वाले लेख अधिकतर महिलाएँ ही लिखती हैं। 'गृह लक्ष्मी' के संचालक श्री के० एन० केसरी स्मरणीय हैं। इन्होंने कई कवयित्रियों का सम्मान समय-समय पर किया है। दूसरी वर्तमान मासिक पत्रिकाओं में राजमहेन्द्रवर की 'संस्कृति', मद्रास की 'किन्नेरा' आदि उच्चकोटि की हैं। 'बाला' और 'चन्दा मामा' बच्चों के लिए हैं। 'चन्दा मामा' कन्नड़, मराठी, हिन्दी आदि कई भाषाओं में भी प्रकाशित हो रहा है। इसके सम्पादक श्री 'चक्रपाणि' हैं। चक्रपाणि की ख्याति पहले से ही 'शरत्' के सफल अनुवादक तथा एक अच्छे कहानीकार के रूप में थी। आप आजकल सफल सम्पादक के नाते भी प्रख्यात हैं। इन्हींकी मासिक पत्रिका 'आन्ध्र ज्योति' कहानी-प्रधान है।

साप्ताहिक पत्रिकाओं में सबसे पहला नाम मछलीबन्दर से निकलने वाली 'कृष्णा पत्रिका' का है। इसके सुयोग्य सम्पादक श्री मुट्नूरि कृष्णराव थे। राव जी बड़े ही कलाप्रिय, अध्ययनशील, त्यागी, देश-भक्त और तेलुगु के सर्वोत्तम गद्य-लेखक थे। इनके 'सम्पादकीयों' के लिए प्रति सप्ताह जनता आतुर हो उठती थी। ये अपनी क़लम की नोक से असहयोग के आन्दोलन के दिनों में अग्नि-वर्षा किया करते थे। ये सभा-समाजों में कभी नहीं बोलते थे। यह इनका स्वभाव ही था। अपने राष्ट्रीय प्रेम के कारण इन्हें कई बार जेल की यातनाएँ भी भोगनी पड़ी थीं। इनके कला-सम्बन्धी लेखों से इनकी अध्ययनशीलता और समालोचनात्मक प्रखर बुद्धि का पर्याप्त परिचय मिलता है। राव की मृत्यु के उपरान्त 'कृष्णा पत्रिका' की

गति धीमी पड़ गई है। दूसरी साप्ताहिक पत्रिकाओं में 'आंध्र-पत्रिका' तथा 'आंध्र-प्रभा' उल्लेखनीय हैं। पहले 'आंध्र-पत्रिका' में विविध विषयों पर लेख निकलते थे, परन्तु आजकल ये दोनों पत्रिकाएँ कहानी-प्रधान हो गई हैं। हाँ, इनके द्वारा एक प्रशंसनीय कार्य यह हो रहा है कि इनमें अंग्रेज़ी उपन्यासों का अनुवाद धारावाहिक रूप में प्रकाशित हो रहा है। 'आंध्र-प्रभा' में तो महिलाओं के लिए 'प्रमदावनमु' नाम से एक अलग स्तम्भ निश्चित किया गया है।

साप्ताहिक पत्रिकाओं में 'स्वतन्त्र' का विशिष्ट स्थान है। सुश्री खासा सुब्बाराव जी इसके सम्पादक हैं। आप स्वतन्त्र विचारों के निर्भीक लेखक हैं। आप ही प्रसिद्ध अंग्रेज़ी साप्ताहिक 'स्वतन्त्र' के प्रसिद्ध सम्पादक हैं। अन्य साप्ताहिकों में 'जागृति', 'कृषि', 'जमीनरैतु' आदि गणनीय हैं।

दैनिक पत्रिकाओं में 'आंध्र-पत्रिका' तथा 'आंध्र-प्रभा' उल्लेख्य हैं। तेलुगु जनता की पहली दैनिक पत्रिका 'आंध्र-पत्रिका' का संचालन ४० वर्ष पूर्व श्री नागेश्वरराव जी के द्वारा हुआ था। यह पत्रिका आंध्रों की समस्याओं और आवश्यकताओं की घोषणा समय-समय पर करती आ रही है। इसकी सम्पादकीय शैली संयत तथा न्याय-सम्मत है। 'आंध्र-प्रभा' का प्रकाशन १६ वर्ष पूर्व आरम्भ हुआ था। सुश्री न्यापति नारायणमूर्ति जी इसके सम्पादक रह चुके हैं। आज यह श्री नार्लवेंकटेश्वरराव जी के सम्पादकत्व में निकल रही है। 'जन्म-भूमि' तथा 'प्रजा प्रत्रिका' आदि भी निकली थीं, परन्तु थोड़े दिन बाद बन्द हो गईं। 'विशालांध्र' कम्युनिस्टों का दैनिक पत्र है। यह विजयवाड़ा से निकल रहा है।

साहित्यिक संस्थाएँ

वैसे तो आंध्र-प्रदेश में कई साहित्यिक संस्थाएँ हैं परन्तु इनमें अपनी शक्ति और उपादानों को केन्द्रित करके काम करने वाली संस्थाओं में निम्नलिखित मुख्य हैं—

१. **आंध्र-साहित्य-परिषद्, काकिनाडा**—इस संस्था ने कई अप्रकाशित ग्रन्थों को योग्य सम्पादकों के द्वारा सम्पादित कराकर प्रकाशित

किया है। इसने बड़ी सफलता के साथ जयन्ति रामय्यपंतुलु जी के नेतृत्व में 'तेलुगु की व्यावहारिक शैली' का विरोध किया। फलतः आजकल भी विश्वविद्यालयों में तेलुगु की ग्रान्थिक शैली प्रचलित है।

२. **साहिती-समिति रेपल्ले**—इस के संस्थापक श्री शिवशंकर शास्त्री जी और मन्त्री नोरि नरसिंह शास्त्री जी हैं। साहिती-समिति के द्वारा रोमांटिसिज़्म के पहले उत्थान में उदीयमान लेखकों को बड़ी प्रेरणा मिली। इसीके प्रोत्साहन से तेलुगु-साहित्य को श्री मुनिमाणिक्य नरसिंह-राव-जैसा कहानीकार, और देवुलपल्लि, शिवशंकर शास्त्री, पेनुमर्ति-जैसे भावुक कवि प्राप्त हुए। 'करुण श्री' भी इससे पर्याप्त प्रभावित हैं।

३. **नव्य साहित्य परिषद्, गुण्टूर**—साहिती-समिति ही विकसित होकर नव्य-साहित्य-परिषद् में परिणत हुई। उन दिनों सभी नवीन कवियों के लिए नव्य-साहित्य-परिषद् एक विश्राम-स्थल तथा आधार-स्तम्भ मालूम पड़ता था। इसके मन्त्री तेलिकिचेर्ल वेंकटरत्नं हैं। परिषद् की ओर से 'प्रतिभा' नाम की त्रैमासिक पत्रिका भी निकलती थी। धीरे-धीरे जब परिषद् में प्रगतिशील कवियों का प्रभाव बढ़ने लगा तो रोमांटिक कवियों ने पुनः साहिती-समिति की स्थापना की। परिषद् के कार्यों में 'राममूर्ति पन्तुलु अभिनन्दन ग्रन्थ' तथा राममूर्ति पन्तुलु की 'व्यासावली' 'बालकविशरण्यमु' आदि कृतियों का प्रकाशन चिर स्मरणीय हैं।

४. **आंध्र-साहित्य-परिषद् हैदराबाद**—इसके सञ्चालक देवुल-पल्लि रामानुजराव हैं। यह संस्था केवल साहित्यिक न होकर प्रचारात्मक भी है। अपनी विभिन्न शाखाओं के द्वारा जनता में तेलुगु का प्रचार करती है और साथ ही 'विशारद' आदि परीक्षाएँ चलाकर जनता में साहित्यिक अभिरुचि भी उत्पन्न कर रही है। हाल ही में इस संस्था की आयोजना के द्वारा डॉ॰ राधाकृष्णन् के नेतृत्व में आलंपुर में आंध्र-साहित्य-सभाओं का विराट् समारम्भ हुआ है। संगठन की शक्ति इस परिषद् की विशेषता है।

तेलुगु-भाषा-समिति मद्रास—इस समिति की स्थापना मद्रास-

सरकार के माजी आर्थिक मन्त्री श्री बेजवाड़ा गोपालरेड्डि के प्रयत्न से हाल ही में हुई है। समिति के मन्त्री श्री मोट्टूरि सत्यनारायण हैं। समिति के समक्ष कई योजनाएँ हैं। वह अभी तेलुगु के बृहद् कोश के निर्माण में तत्पर हैं। साथ ही प्रतिवर्ष लेखकों को निर्णीत विषयों पर पुरस्कार-वितरण कर रही है। साहित्य के साथ विज्ञान के लिए भी इसमें स्थान है। समिति के प्रधान सम्पादक श्री गिडुगु सीतापति हैं। इस संस्था में मल्लंपल्लि सोम-शेखर शर्मा-जैसे विज्ञ पुरुष काम कर रहे हैं।

सहायक ग्रन्थ

आन्ध्रकवुलु चरित्र — वीरेश लिङ्गम् पन्तुलु

आन्ध्र वाङमय चरित्रमु

आन्ध्र वाङमय चरित्र संग्रहमु — खण्डवल्लि लक्ष्मीरंजन

नव्यान्ध्र साहित्य वीथुलु

आन्ध्र रचयितुलु — म० सत्यनारायण शास्त्री